विक्रेता—

मुकुन्ददास गुप्त एंड कंपनी

बनारस सिटी।

प्रकाशक—
पं० गयाप्रसाद शुक्ल
व्यवस्थापक, साहित्य-सेवा-सदन
बुलानाला, बनारस सिटी।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस
७१७-३१

अनुक्रमणिका

साहित्य-सेवा-सदन, काशी।

स्थायी ग्राहकों के लिये नियमः—

(१) प्रवेश-शुल्क बारह आना मात्र देना पड़ता है।

(२) स्थायी ग्राहकों को इस कार्यालय के समस्त पूर्व प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की एक २ प्रति पौने मूल्य में दी जायगी।

(३) किसी भी पुस्तक का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। इसके लिये कोई बन्धन नहीं है। किन्तु वर्षभर में कम से कम ३) तीन रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तकें लेनी पड़ती हैं।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादि की सूचना भेजी जाती है और १५ दिवस पश्चात् उसकी वी. पी. भेजा जाती है। यदि किसी सज्जन को कोई पुस्तक न लेनी हो तो पत्र पाते ही सूचना देनी चाहिये। वी. पी. लौटाने से डाक-व्यय उन्हीं को देना पड़ेगा अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से पृथक् कर दिया जाता है।

(५) ग्राहकों के इच्छानुसार डाक-व्यय के बचाव के लिए ३-४ पुस्तकें एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।

(६) स्थायी ग्राहकों को अन्य पुस्तकों पर भी प्रायः एक आना रुपया कमीशन दिया जाता है और साहित्य-संसार में नवीन प्रकाशित पुस्तकों की सूचना भी समय २ पर दी जाती है।

(७) ग्राहकों को प्रत्येक पत्र में अपना ग्राहक-नम्बर, पता इत्यादि स्पष्ट लिखना चाहिये।

वक्तव्य

नवाब अब्दुर्रहीम खाँ ख़ानख़ानाँ मुग़ल-साम्राज्य के प्रसिद्ध सर्दार, मंत्री तथा सेनापति थे और हिंदी-जगत में भी वे रहीम या रहिमन उपनाम से लगभग उतने ही विख्यात कवि हो गए हैं। यदि वे अकबरी नवरत्न के बहुमूल्य मणि थे तो हिंदी कवि-रत्नमाला के भी अमूल्य मणि हैं। इनका जीवन-चरित्र पढ़ने से ज्ञात होगा कि इन्हें अपने जीवनसंग्राम में कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं और साम्राज्य के इतने बड़े बड़े कार्यों को हाथ में लेने पर भी उन्हें साहित्य-सेवा के लिए समय मिल जाता था। इन प्रतिभाशाली और अनुभवी विद्वान, वीर तथा कवि की रचना में यदि माधुर्य और प्रभावोत्पादन की पूर्ण मात्रा आ गई है तो यह कुछ अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। इनके नीति, परिहास, आत्माभिमान आदि के दोहे इतने प्रचलित हैं कि उनके लिए किसी प्रकार की भूमिका बांधना व्यर्थ है। इसलिये रहीम की कविता के अनेक संस्करणों के रहते हुए भी इस नए संस्करण के निकालने की आवश्यकता बतलाना ही आवश्यक है।

इस संस्करण में ख़ानख़ानाँ का संक्षिप्त जीवनचरित्र दिया गया है जो फ़ारसी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है और उसमें संक्षेपतः उनके जीवन की सभी घटनाएँ आ गई हैं। इनके जीवनचरित्र और कविता को साथ ही पढ़कर साहित्यमर्मज्ञ समझ सकेंगे कि पहले का दूसरे पर कहाँतक असर पड़ा है। ख़ानख़ानाँ की यौवनावस्था का एक चित्र भी दिया गया है जो जोधपुर की राजकीय चित्रशाला से मुं० देवीप्रसादजी के अनुग्रह से प्राप्त हुआ है। वृद्धावस्था का भी एक चित्र मिला है जो अकबरी नवरत्न में प्रकाशित होगा। इस संग्रह में दोहे वर्णानुक्रम से रखे गए हैं जिससे मिलान करने में पाठकों को सुविधा होगी। जो पाठांतर या अन्य

कवियों के समानार्थी दोहे मिले हैं वे भी फुटनोट में दिए गए हैं। साथ ही अंत में कठिन शब्दों के अर्थ तथा व्याख्या आदि भी दी गई है।

ख़ानख़ानाँ के कई ग्रंथ अपूर्ण और अप्राप्य हैं और यह आशा की जा सकती है कि समय पाकर ये कभी पूर्ण या प्राप्य हो सकेंगे। इसके लिए सभी हिंदी प्रेमियों को प्रयत्न करना चाहिए कि इस संग्रह के अतिरिक्त जो कोई पद उन्हें मिले उसे सूचित कर इस सत्कार्य में सहायता प्रदान करेंगे।

रहीम की रचनाओं की सूची नीचे दी जाती है—

१. दोहावली—कहा जाता है कि रहीम ने पूरे सात सौ दोहे लिखकर सतसई तैयार की थी पर वे सब दोहे अभी तक अप्राप्य हैं। केवल दो सौ पैंसठ दोहे प्राप्त हुए हैं जो इस संग्रह में दिए गए हैं और इसलिए इसका नाम सतसई न रखकर दोहावली रखा गया है। कुछ दोहों में इनका उपनाम रहीम या रहिमन नहीं है। ये दोहे संशयास्पद होने पर भी इन्हीं के समझे जाएँगे जबतक वे किसी अन्य कवि के निश्चित रूप से न साबित हो जाँय। कुछ दोहों का अर्थ समझ में नहीं आता और कुछ शिथिल भी हैं। इन दोहों की भाषा मुख्यतः ब्रजभाषा है। ख़ानख़ानाँ ने सरल सीधी भाषा में नीति, विराग, परिहास आदि के अत्युत्तम दोहे कहे हैं। इनकी भाषा टकसाली, मधुर और मनोहारिणी है। यही कारण है कि इनके दोहे सभी कोटि के मनुष्यों में प्रचलित हैं।

२. बरवै नायकाभेद—यह ग्रंथ पूरा प्राप्त है और पहले पहल कविवचनसुधा और फिर भारतजीवन प्रेस में छप चुका है। यह शुद्ध अवधी भाषा में है। इसमें नायक और नायका के लक्षण सरल उदाहरण देकर समझाए गए हैं जो बरवै छंद में हैं। हिंदी साहित्य का कोई भी कवि इस छंद में इनकी बराबरी नहीं कर सका है।

३. शृंगार सोरठ—यह पुस्तक भी अप्राप्य है। इसके नाम से ज्ञात होता है कि इसमें शृंगार-विषयक सोरठे थे। इनके दोहों में मिले हुए सोरठों में कुछ शृंगारिक सोरठे भी थे जिन्हें अलग कर इस पुस्तक का स्वरूप खड़ा कर दिया गया है।

४.—मदनाष्टक—यह खड़ी बोली की कविता आठ छंदों में है। दूसरा छंद तो बहुत दिनों से प्रचलित है पर अन्य साढ़े छ छंद सम्मेलन पत्रिका में हाल ही में निकले हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज में इधर ही दो मदनाष्टक प्राप्त हुए हैं जिनमें एक को किसी अन्य कवि ने उसी ढंग पर प्रथम पद के अंतिम पंक्ति को समस्या मानकर रचा है। इस प्रकार आज पूरा मदनाष्टक प्राप्त है।

५. रासपंचाध्यायी—यह ग्रंथ अप्राप्य है। भक्तमाल से दो पद प्राप्त हुए हैं जो इस संग्रह में दिए गए हैं। ये इस ग्रंथ के अंश हो सकते हैं।

६. रहीमकाव्य—यह संस्कृत और संस्कृत-हिंदी-मिश्रित श्लोकों का संग्रह है जो अप्राप्य है। कुछ श्लोक जो मिले हैं वे संगृहीत हैं।

७. खेटकौतुक जातकं—संस्कृत में ज्योतिषविषयक ग्रंथ है।

८. वाक़ेआते-बाबरी—बाबर के आत्मचरित्र का तुर्कीभाषा से फ़ारसी में अनुवाद।

रहीम की कविता पर मुझे बहुत प्रेम है और इसे मैं बहुत दिनों से संग्रह करता रहा। इधर कई संस्करण निकले थे पर चित्र चरित्र आदि के अभाव के कारण वे मेरी समझ में अपूर्ण थे। अब यह संस्करण भी पाठकों के सामने रखा जाता है जिसे वे अपनाकर मेरे संपादन के श्रम को सफल करेंगे और मेरे त्रुटियों को बतलाकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

चैत्र, रामनवमी
सं० १९७९ वि०

ब्रजरत्नदास

उन पुस्तकों की सूची जिनसे इस संग्रह के संकलन में सहायता ली गई है।

१. रहिमन-शतक—पं० सूर्यनारायण दीक्षित द्वारा संपादित
२. रहीम-रत्नाकर—पं० उमराव सिंह त्रिपाठी ,,
३. रहिमन-विलास—बा० राधाकृष्णदास रचित रहीम के दोहों पर कुंडलियां
४. रहीम की दोहावली—मिश्र बंधुओं की हस्तलिखित प्रति
५. रहीम— पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित
६. कविता कौमुदी भाग १ ,, ,,
७. भड़ौआ संग्रह—पं० नकछेदी तिवारी ,,
८. बरवै नायका भेद— ,, ,,
९. विजय हज़ारा—मौ० अब्दुलहक़
१०. शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर
११. मिश्रबंधु-विनोद भाग १—मिश्रबंधुत्रय
१२. ख़ानख़ानाँ नामा—मु० देवीप्रसाद कृत
१३. भक्तमाल—नाभादास और प्रियादास प्रणीत
१४. मआसिरुल् उमरा जि० १ पृ० ६९३–७१२—नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ ख़ाँ कृत
१५. सम्मेलन पत्रिका भाग १२ अंक १, २ में 'मदनाष्टक' लेख

कवि-परिचय

अलीशकर भारलू के वंशधर सैफ़ अली बेग अपने पिता के साथ बाबर बादशाह के यहाँ आकर नौकर हो गए। इनके पुत्र बैराम खाँ खानखानाँ हुए। पिता की मृत्यु पर बलख़ में इन्होंने शिक्षालाभ किया। सोलह वर्ष की अवस्था में ये हुमायूँ बादशाह की सेवा में नियुक्त हुए और धीरे धीरे उन्नति कर शाही कृपा से सरदार बन गए। कन्नौज के युद्ध में इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई परंतु हुमायूँ बादशाह के परास्त हो जाने पर ये भागे और घूमते फिरते सिंध नदी के तट पर बसे हुए जून गाँव में बादशाह से जा मिले।

जब हुमायूं ने ससैन्य फ़ारस से लौटकर कंधार दुर्ग विजय किया तब ये वहाँ के अध्यक्ष बनाए गए। भारत-विजय पर अकबर बादशाह के ये शिक्षक नियत हुए और उसी वर्ष सं० १६१३ वि० में हुमायूँ बादशाह की मृत्यु हो जाने के कारण ये साम्राज्य के प्रबंधकर्त्ता और अकबर के अभिभावक बने। द्वितीय पानीपत युद्ध में इन्होंने अफ़ग़ानों को पूरी तरह हराकर मुग़ल साम्राज्य की नींव दृढ़ कर दी।

सं० १६११ वि० में जब हुमायूँ बादशाह दिल्ली आए थे तब हुसेन ख़ाँ मेवाती का भाई जमाल ख़ाँ अपनी दो पुत्रियों के साथ उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह ने बड़ी पुत्री से स्वयं विवाह किया और छोटी पुत्री का बैराम ख़ाँ से विवाह

कर दिया। इसी के गर्भ से सं० १६१३ वि० (१४ सफ़र ९६३ हि०) में अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ का जन्म लाहौर में हुआ था।

बैराम ख़ाँ के उद्धतपन से दुखित होकर जब अकबर बादशाह ने राज्यप्रबंध अपने हाथ में ले लिया तब बैराम ख़ाँ ने चिढ़कर विद्रोह किया पर परास्त होने पर, क्षमाप्रार्थना की। अकबर ने क्षमा करके उसे हज्ज जाने की आज्ञा दे दी। बैराम ख़ाँ गुजरात के पाटन नगर में ठहरा था जहाँ मुबारक ख़ाँ लोहानी नामक एक अफ़ग़ान ने इसे भेंट करने के बहाने से मार डाला। जब लुटेरों ने कैंप लूटना आरंभ कर दिया तब मुहम्मद अमीन दीवाना और बाबा ज़ंबूर अब्दुर्रहीम ख़ाँ को जिनकी अवस्था उस समय चार वर्ष की थी उनकी माता सहित वहाँ से बचाकर अहमदाबाद ले गए।

चार महीने के अनंतर मुहम्मद अमीन दीवाना के साथ अब्दुर्रहीम ख़ाँ दिल्ली चले और जालौर में शाही आज्ञापत्र भी इन्हें बुलाने का मिला। सं० १६१८ वि० में ये आगरे पहुँच गए और बादशाह ने इनपर बड़ी कृपा करके इनके पालन और शिक्षण का भार स्वयं अपने ऊपर ले लिया।

जब अब्दुर्रहीम ख़ाँ अवस्था को प्राप्त हुए और पढ़ लिख कर योग्य हुए तब बादशाह ने मिर्ज़ा ख़ाँ की पदवी इन्हें दी और ख़ानेआज़म कोका की बहिन माहबानू बेगम से इनका विवाह कर दिया। सं० १६३३ वि० में ये गुजरात के सूबेदार बनाए गए परंतु राज्यप्रबंध का सब कार्य्य वज़ीर ख़ाँ के हाथ में था। सं० १६३७ वि० में बादशाह ने इन्हें मीर अर्ज़ी के पद पर नियुक्त किया और तीन वर्ष के अनंतर सुलतान सलीम का शिक्षक बनाया।

सं० १६२६ वि० में जब बादशाह अकबर ने गुजरात पर चढ़ाई करके वहाँ अधिकार कर लिया था तब वहाँ का सुलतान मुज़फ़्फ़र भी पकड़ा गया था। सं० १६३५ वि० में कारागार से भागकर वह गुजरात गया और काठियों की सहायता से जूनागढ़ में ठहर गया। गुजरात के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद के पद-च्युत होने पर जब एतमाद ख़ाँ उस पद पर नियुक्त हुआ तब पहले सूबेदार के नौकरों ने विद्रोह किया। मुज़फ़्फ़र जो ऐसा ही अवसर ढूँढ़ रहा था झट विद्रोहियों से आकर मिल गया और उनका सरदार बनकर उसने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। यह समाचार सुनते ही बादशाह ने मिर्ज़ा ख़ाँ को ससैन्य विद्रोह-दमन करने के लिए भेजा, पर विद्रोही सेना लगभग चालीस सहस्र के हो गई थी और इनके पास केवल दस सहस्र सेना थी। सरदारों की यही राय थी कि ऐसे समय युद्ध करना ठीक नहीं है और बादशाह की भी आज्ञा थी कि मालवे से कुलीज ख़ाँ की अधीनस्थ सहायक सेना के पहुँचने तक युद्ध मत आरंभ करना। मिर्ज़ा ख़ाँ के मित्र मीर शमशेर दौलत ख़ाँ लोदी ने अपनी यह सम्मति दी कि उस समय की विजय में कई साझी होंगे और यदि आपको ख़ानख़ानाँ होने का उत्साह हो तब अकेले ही विजय प्राप्त करना उचित है क्योंकि अप्रसिद्ध जीवन से मृत्यु ही भली है।

मिर्ज़ा ख़ाँ को यही सम्मति ठीक समझ पड़ी और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ युद्ध की तय्यारी की। अहमदाबाद से तीन कोस पर सरखेज नामक गाँव में बड़ा घोर युद्ध हुआ और दोनों ओर के वीरों ने बड़ी वीरता दिखलाई। तीन सौ सैनिकों और सौ हाथियों के साथ मिर्ज़ा ख़ाँ स्वयं बीच में

खड़े थे। सुलतान मुज़फ़्फ़र ने छ सात सहस्र सवारों के साथ धावा किया। इनके मित्रों ने चाहा कि इन्हें हटा ले जावें पर यह अदम्य उत्साह के साथ डटे रहे और अंत में उन्होंने शत्रु को परास्त कर भगा दिया। मुज़फ़्फ़र जो सेना की संख्या के घमंड में भूला हुआ था इस पराजय से घबड़ाकर खंभात भागा। खंभात के व्यापारियों को लूटकर जब मुज़फ़्फ़र ने फिर युद्ध की तय्यारी की तब मिर्ज़ा ख़ाँ ने सहायक सेना के आ जाने पर उसपर चढ़ाई की। कई पराजयों के बाद वह नादोत गया पर वहाँ भी परास्त होने पर राजपीपला के जंगलों में भाग गया। यह विद्रोह लगातार कई वर्षों तक चलता रहा और इसका अंत तब हुआ जब सं० १६५० वि० में मुज़फ़्फ़र शाह ने आत्मघात करके अपना अंत कर दिया। इस विजय के उपलक्ष में अकबर बादशाह ने इन्हें ख़ानख़ानाँ की पदवी और पाँच हज़ारी मंसब देकर सम्मानित किया।

मिर्ज़ा ख़ाँ ने युद्ध के पहले प्रतिज्ञा की थी कि विजय के अनंतर जो कुछ मेरे पास है वह सब बाँट दूँगा, सो उन्होंने वैसा ही किया। हाथी घोड़ों के दाम आँके जाकर उसके मूल्य बाँटे गए। सब बाँटे जाने पर एक मनुष्य ने आकर कहा कि मुझे कुछ नहीं मिला, तब उन्होंने क़लमदान को जो आगे रखा था उठाकर दे दिया। इसके अनंतर गुजरात का प्रबंध ठीक करके शाही आज्ञानुसार कुलीज ख़ाँ आदि को वहीं छोड़कर इन्होंने स्वयं फ़तेहपुर जाकर बादशाह से भेंट की।

सं० १६४७ वि० में ख़ानख़ानाँ ने बाबर के आत्म-चरित्र का तुर्की भाषा से फ़ारसी में यथातथ्य अनुवाद करके बादशाह को भेंट किया। इसकी बड़ी प्रशंसा हुई। उसी वर्ष ये वकील बनाए गए और इन्हें जौनपुर जागीर में मिला।

सं० १६४६ वि० में ख़ानख़ानाँ को मुल्तान जागीर में दिया गया और उन्हें ठट्टा तथा सिंध पर अधिकार करने के लिये आज्ञा हुई। ख़ानख़ानाँ मुल्तान पहुँचने के उपरांत बड़ी बुद्धिमानी और फुर्ती से दुर्ग सेहवन के नीचे से निकलकर लाखी जा पहुँचे और उस पर अधिकार कर लिया। बंगाल की गढ़ी के समान यह भी इस देश में जाने का फाटक कहलाता है। ठट्टा का नवाब मिर्ज़ा जानी बेग बड़ी तैयारी के साथ युद्ध के लिये आया पर ख़ूब युद्ध होने के अनंतर जब वह परास्त हुआ तब उसने संधि का प्रस्ताव किया। यह घटना एक वर्ष के अनंतर हुई थी। ख़ानख़ानाँ ने भी अन्नादि की कमी के कारण इन नियमों पर संधि कर ली कि मिर्ज़ा जानी बेग दुर्ग सेहवन दे दें, अपनी पुत्री का विवाह ख़ानख़ानाँ के पुत्र मिर्ज़ा एरिज से कर दें और वर्षा बीतने पर बादशाह के दरबार में जावें। हसन अली अरब को दुर्ग सेहवन सौंपकर ख़ानख़ानाँ लौट आए। वर्षा के अनंतर मिर्ज़ा जानी बेग जब दरबार जाने को नहीं तैयार हुआ तब ख़ानख़ानाँ को फिर ठट्टा जाना पड़ा। मिर्ज़ा जानी बेग के युद्ध की इच्छा प्रकट करने पर ख़ानख़ानाँ ने उसे फिर से पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और उसे सपरिवार साथ ले जाकर बादशाह के सम्मुख उपस्थित किया। मिर्जा पर बादशाह ने बहुत कृपा की। मुल्ला शिकेबी ने ख़ानख़ानाँ के विजय पर एक मसनवी लिखी थी जिस पर उन्होंने उसे दो सहस्र अशरफ़ी पुरस्कार दी थी। इसके एक शेर पर मिर्ज़ा जानी बेग ने भी एक सहस्र अशरफ़ी दी और कहा कि ईश्वर की कृपा है कि तुमने मुझे हुमा * बनाया। यदि तुम

* एक कल्पित चिड़िया है जिसके सिर पर बैठने से दरिद्र मनुष्य भी बादशाह हो जाता है।

गीदड़ कहते तो मैं तुम्हारा मुँह न रोक सकता। शैर यह है—

हुमाए कि बर चर्ख़ करदी ख़िराम।
गिरफ़्ती व आज़ाद करदी ज़े दाम॥

अर्थ यह है कि हुमा जो आकाश में उड़ रही थी, उसे फंदे में फँसाकर छोड़ दिया।

अहमदनगर के सुलतान बुर्हान निज़ाम शाह द्वितीय की सं० १६५२ वि० में मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र सुलतान इब्राहीम गद्दी पर बैठा परंतु राज्य में बड़ी गड़बड़ मची हुई थी और वहाँ के नेतागण चार विभागों में बँटकर आपस में झगड़ रहे थे। इनमें से एक के सहायता माँगने पर बादशाह अकबर ने सुलतान मुराद और नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ को सेना सहित दक्षिण की ओर भेजा। शाही आज्ञानुसार सुलतान मुराद गुजरात से चलकर भँड़ोच पहुँच वहीं ठहर गए और ख़ानख़ानाँ की प्रतीक्षा करने लगे। ख़ानख़ानाँ कुछ दिन अपनी जागीर भिलसा में ठहरकर उज्जैन गए। इस समाचार को सुनकर शाहज़ादे ने आवेश में कड़ा पत्र उन्हें लिखा। ख़ानख़ानाँ ने उत्तर भेजा कि हम ख़ानदेश के नवाब राजा अली ख़ाँ को अपनी ओर मिलाकर साथ लिए हुए आवेंगे। शाहज़ादे ने इस उत्तर को पाकर बड़ा क्रोध प्रकाश किया और वह दक्षिण की ओर बढ़ गए। यह सुनकर ख़ानख़ानाँ तोपख़ाना और कंप मिर्ज़ा शाहरुख़ को सौंपकर तथा राजा अली को साथ लेकर शाहज़ादे से मिलने चले।

अहमदनगर से चालीस कोस उत्तर चांदावर स्थान में ख़ानख़ानाँ शाहज़ादे से जा मिले, पर उसके रूखे बर्त्ताव से दुखित होकर उन्होंने काम से हाथ खींच लिया। सं० १६५२ वि० के अंत में अहमदनगर घेर लिया गया और तोपख़ाने लगाने तथा

खान खोदने का प्रबंध होने लगा। बुर्हान निज़ाम शाह द्वितीय की बहिन चांद बीबी सुलताना ने आहंग ख़ाँ हब्शी की सहायता से दुर्ग की पूरी रक्षा की। शाही अफसरों की अनबन से दुर्ग लेने में बहुत कठिनाइयों का सामना पड़ा। इन कारणों से चांद सुलताना के संधि प्रस्ताव करने पर सुलतान मुराद ने उसे मान लिया। बुर्हान निज़ाम शाह के पौत्र बहादुर को निज़ामुल्मुल्क बनाकर अहमदनगर जागीर में दिया गया और बरार को बादशाह ने अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इसी समय बीजापुर के सुलतान की एक बड़ी सेना जो मोतमिदुद्दौला सुहेल ख़ाँ सेनापति के अधीन अहमदनगर के सहायतार्थ भेजी गई थी वहाँ आ पहुँची। जब सुहेल ख़ाँ बीजापुर की सेना को दाहिने भाग में, गोलकुंडा की सेना को जो सहायता के लिए आई थी बाएं भाग में और अहमदनगर की सेना को मध्य में रखकर युद्ध की तय्यारी करने लगा तब सुलतान मुराद ने भी युद्ध की इच्छा की, पर उसके अधीनस्थ सेनानियों ने नहीं माना। इस पर ख़ानख़ानाँ, मिर्ज़ा शाहरुख़ और राजा अली ख़ाँ शाहपुर से चलकर सुहेल ख़ाँ के सामने पहुँचे और आश्टी के पास जो पथरी से बारह कोस पर है घोर युद्ध हुआ। यह घटना सं० १६५४ वि० में (सन् १५९७ ई० के जनवरी महीने के अंत में) हुई थी। ख़ानदेश का नवाब राजा अली ख़ाँ, जो बाएँ भाग में था, बीजापुरियों से युद्ध कर पाँच सर्दारों और पाँच सौ सैनिकों के साथ मारा गया। ख़ानख़ानाँ और मिर्ज़ा शाहरुख़ मध्य में थे और इन्होंने अहमदनगर की सेना को छितिर बितिर कर दिया। रात्रि हो जाने के कारण दोनों सेनाएँ आमने सामने पड़ी रहीं। सबेरे दोनों सेनाओं का नदी के तट पर, जहाँ सैनिकगण प्यास

बुझाने गए थे, घोर युद्ध हुआ और अंत में सुहेल ख़ाँ परास्त होकर भाग गया।

इस विजय के अनतंर ख़ानख़ानाँ ने पचहत्तर लाख रुपया सिक्का और सामान आदि लुटा दिया। इतनी प्रसिद्ध विजय से भी कुछ लाभ नहीं हुआ और यह दरबार में बुला लिए गए। उसी वर्ष के अंत में इनकी स्त्री माहबानू बेगम की मृत्यु हो गई।

बादशाह ने अबुलफ़ज़ल को दक्षिण का हाल चाल देखने को भेजा था। उनकी सम्मति से वे स्वयं सं० १६५५ वि० में लाहौर से दक्षिण चले। सुलतान मुराद की मृत्यु हो चुकी थी इसलिए उन्होंने सुलतान दानियाल और ख़ानख़ानाँ को दक्षिण भेजा। इन लोगों ने सं० १६५७ वि० के आरंभ में पहुँचकर अहमदनगर घेर लिया। कई महीने घेरा रहा और दोनों ओर से बहुत वीरता दिखलाई गई पर जब दुर्ग टूटने पर आया तब चांद बीबी ने संधि प्रस्ताव करने की सम्मति दी। आहंग ख़ाँ हब्शी जूनेर भाग गया था और दुर्ग में चीता ख़ाँ हब्शी ने चांद बीबी के विरुद्ध होकर कुछ विद्रोहियों के साथ महल में घुसकर उसको मार डाला। इधर दुर्ग की तीस गज़ दीवाल को शाहज़ादे ने ख़ान लगवाकर उड़ा दिया और लैली बुर्ज से सेना ने घुसकर चार महीना चार दिन के अनंतर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। ख़ानख़ानाँ बहादुर निज़ाम शाह को सपरिवार साथ लेकर बादशाह के पास बुरहानपुर गए। बादशाह ने इन्हें ग्वालिअर भेजकर क़ैद कर दिया।

अहमदनगर के घेरे के पहले ही ख़ानदेश से अनबन हो गई थी जिससे बादशाह ने उस राज्य पर अधिकार कर लिया। आगरे में शाहज़ादा सलीम के विद्रोह करने का समाचार सुनकर बादशाह ने ख़ानदेश का नाम दानदेश रखकर उसे

बरार सहित एक सूबा बनाया और सुलतान दानियाल को सूबेदार और ख़ानख़ानाँ को दीवान नियत किया। इसी समय ख़ानख़ानाँ की पुत्री जाना बेगम का सुलतान दानियाल से विवाह हुआ। इसके अनंतर बादशाह ने ख़ानख़ानाँ को राजू-मना और मलिक अंबर पर भेजा जिन्होंने शाह अली के पुत्र को मुर्तज़ा निज़ाम शाह द्वितीय के नाम से गद्दी पर बिठाकर फिर विद्रोह आरंभ कर दिया था। अबुलफ़ज़ल को दक्षिण में इन प्रबंधों की पूर्ति करने के लिए छोड़कर बादशाह स्वयं आगरे लौट गए।

सुलतान सलीम का विद्रोह शांत हो गया था पर इन्हीं की इच्छा से लौटते समय अबुलफ़ज़ल को ओड़छा-नरेश वीरसिंह देव बुंदेला ने मार डाला। बादशाह अकबर की मृत्यु सं० १६६२ वि० (१५ अक्तूबर सन १६०५ ई०) में आगरे में हुई।

मलिक अंबर ने नई राजधानी स्थापित करके, जिसे अब औरंगाबाद कहते हैं, अपने सुशासन से राज्य की बड़ी उन्नति की और बादशाह अकबर की मृत्यु पर अहमदनगर भी विजय कर लिया। इस समय ख़ानख़ानाँ दक्षिण ही में थे और सं० १६६५ वि० में बादशाह जहांगीर के आज्ञानुसार राजधानी लौट आए। बादशाह ने इनके इस कथन पर कि यदि बारह सहस्र नई सेना उन्हें सहायतार्थ मिले तो वह दक्षिण के विद्रोह का दो वर्ष के भीतर ही नाश कर देंगे उन्हें उतनी सेना, दस लाख सिक्का, हाथी, घोड़े आदि देकर विदा किया, परंतु उनके जाते ही शाहज़ादा पर्वेज़ को उसके अभिभावक आसफ़ ख़ाँ जाफ़र, राजा मानसिंह, शरीफ़ खाँ अमीरुल्उमरा और ख़ान-जहाँ लोदी के साथ सहायतार्थ भेज दिया। युवक शाहज़ादे से इनकी नहीं पटी और ठीक वर्षाऋतु में चढ़ाई कर दी

गई जिसका फल पराजय और मानहीन संधि हुई। ऊपर से शाहजादे ने यह भी लिख भेजा कि जो कुछ हुआ है सब ख़ानख़ानाँ की सम्मति से हुआ है। जहांगीर ने इन्हें लौट आने की आज्ञा भेज दी।

सं० १६६८ वि० में ख़ानख़ानाँ को कन्नौज और कालपी जागीर में मिली जहाँ के विद्रोहियों को इन्होंने शांत किया। दूसरे वर्ष दक्षिण से समाचार आया कि अब्दुल्ला ख़ाँ परास्त और घायल होकर गुजरात भाग गया और शाहज़ादा तथा ख़ानजहाँ का कुछ किया नहीं हो रहा है। जहांगीर ने ख़ानख़ानाँ को छहज़ारी मंसब, उनके बड़े पुत्र शाहनवाज़ ख़ाँ को तीन-हज़ारी मंसब, घोड़े, हाथी आदि देकर ख़्वाजा अबुलहसन के साथ फिर दक्षिण भेजा। शाहनवाज़ ख़ाँ ने बालापुर के पास मलिक अंबर को कड़े युद्ध के अनंतर पूरी पराजय दी। सं० १६७३ वि० में जहांगीर ने शाहज़ादे ख़ुर्रम को ससैन्य दक्षिण भेजा और वह स्वयं मांडू आया। शाहजहाँ बुर्हानपुर में ठहरे और बुद्धिमान मनुष्यों द्वारा बातचीत करके बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों से संधि कर उनकी अधीनता और भेंट स्वीकार कर ली। मलिक अंबर ने भी अहमदनगर और परगना बालाघाट दुर्गों के सहित देकर संधि कर ली।

शाहजहाँ ने ख़ानख़ानाँ को ख़ानदेश, बरार और अहमद-नगर का सूबेदार नियुक्त किया और शाहनवाज़ ख़ाँ को विजित प्रांत पर अधिकार करने के लिए भेजा। इतना प्रबंध कर वे स्वयं पिता से भेंट करने मांडू गए जहाँ इनका बड़ा स्वागत हुआ। इसी समय बादशाह के आज्ञानुसार शाहनवाज़ ख़ाँ की पुत्री से शाहजहाँ ने विवाह कर लिया। सं० १६७५ में ख़ानख़ानाँ दर्बार में आए और सातहज़ारी सात हज़ार सवार का मंसब,

ख़िलअत आदि पाकर अपनी सूबेदारी पर दक्षिण को लौट गए। दूसरे वर्ष अति मद्यपान के कारण शाहनवाज़ ख़ाँ की मृत्यु हो गई जिससे इन्हें बड़ा शोक हुआ और जहाँगीर ने भी इस योग्य युवक की मृत्यु पर अपने आत्म-चरित्र में शोक प्रकाश किया है। इसके एक वर्ष अनंतर रहमानदाद नामक इनका दूसरा पुत्र मर गया।

इसी वर्ष मलिक अंबर ने संधि तोड़कर मुग़ल थानेदारों पर चढ़ाई कर दी जिससे दाराब ख़ाँ बालाघाट से बालापुर और वहाँ से बुर्हानपुर चला गया जहाँ पिता और पुत्र दोनों घिर गए। शाहजहाँ के पहुँचने पर दक्खिनी छितिर बितिर हो गए।

सं० १६७६ वि० में फ़ारस के बादशाह शाह अब्बास सफ़वी ने कंधार पर चढ़ाई की जिस पर शाहजहाँ और ख़ानख़ानाँ को उसके रक्षार्थ जाने के लिए राजधानी पहुंचने की आज्ञा आई। शाहजहाँ मांडू पहुंचकर आगे बढ़ने में आगा पीछा कर रहा था कि नूरजहाँ के षड्यंत्र से पर्वेज़ को युवराज और महाबत ख़ाँ को ख़ानख़ानाँ की पदवी मिली। इस समाचार को पाकर शाहजहाँ विद्रोही होगए और ख़ानख़ानाँ को साथ लेकर बुर्हानपुर लौट गए। इस पर जहांगीर ने पर्वेज़ और महाबत ख़ाँ को इन्हें दमन करने के लिये भेजा। ख़ानख़ानाँ ने जो पत्र महताब ख़ाँ को लिखा था वह शाहजहाँ के हाथ पड़ गया उन्होंने इन्हें इनके पुत्र दाराब ख़ाँ सहित पकड़कर आसीरगढ़ भेज दिया। पर कुछ दिनों में वचन देने पर छोड़ दिया।

पर्वेज़ और महाबत ख़ाँ नर्मदा नदी तक पहुँच गए थे पर शाहजहाँ के अफ़सर बैरामबेग ने कुल नावें इस पार एकत्र करके नदी की ऐसी रक्षा की थी कि वे पार नहीं उतर सके।

ख़ानख़ानाँ की सम्मति पर संधि करना ठीक हुआ और इनसे कुरान पर शपथ लेकर संधि की बातचीत करने के लिए पर्वेज़ के पास भेजा गया। संधि की बातचीत होने के कारण नदी की रक्षा में कुछ ढिलाई पड़ गई जिससे महाबत ख़ाँ ने धोखे से चुने हुए सैनिकों को पार उतार दिया और ख़ानख़ानाँ भी उससे मिलगए। शाहजहाँ बुर्हानपुर से तेलिंगाना होते हुए उड़ीसा और बंगाल चले गए।

पर्वेज़ और महाबत ख़ाँ ताप्ती पार कर कुछ दूर पीछे गए। ख़ानख़ानाँ ने राजा भीम सिंह को जो शाहजहाँ के साथ थे लिखा कि यदि उसके पुत्र लौटा दिए जायँ तो वह किसी प्रकार शाही सेना को अटका लेगा। परंतु राजा भीम ने कहला भेजा कि शाहजहाँ के पास अभी पाँच छ सहस्र सवार हैं और युद्ध होने पर पहले उसीके पुत्र मारे जायँगे। शाहजहाँ ने बंगाल और बिहार पर अधिकार करके ख़ानख़ानाँ के पुत्र दाराब ख़ाँ को वहाँ का सूबेदार बनाया और वह स्वयं प्रयाग की ओर बढ़ा जहाँ महाबत ख़ाँ आ पहुँचा था। यहीं महाबत ख़ाँ ने ख़ानख़ानाँ को, जो उस पर शंका करता था, क़ैद में डाल दिया। शाहजहाँ ने वहाँ पहुँचकर दाराब ख़ाँ को बुला भेजा पर उसने लिखा कि यहाँ ज़मींदारों ने मुझे घेर रखा है इसलिए हाजिर नहीं हो सकता। शाहजहाँ की सेना नष्ट हो चुकी थी इससे यह विचार कर कि यह भी बादशाह से मिल गया है वे दक्षिण को चले गए। सं० १६८२ वि० में जहांगीर ने इन्हें महाबत ख़ाँ की क़ैद से छुड़ाकर अपने पास बुला लिया और बहुत कुछ बातें बनाकर इन्हें इनका मंसब और पदवी आदि फेर दिया जिस पर इस वृद्ध सर्दार ने तत्काल यह शेर पढ़ा—

'मरा लुत्फ़े जहाँगीरी ज़े ताईदाते रब्बानी।

दोबारः ज़िंदगी दादः दोबारः ख़ानख़ानानी ॥'

इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वरी सहायता से जहाँगीर की कृपा ने मुझे दूसरी बार जीवन और ख़ानख़ानाँ की पदवी दी।

ख़ानख़ानाँ अपनी जागीर लाहौर को चले गए और वहीं ठहरे हुए थे जब महाबत खाँ नूरजहाँ के षड्यंत्र से भागकर वहाँ पहुँचा पर ख़ानख़ानाँ ने पुराने बर्त्ताव का विचार करके उससे कुछ भी बातचीत नहीं की। इसपर वह वहाँ से चला गया। काबुल से शाही सेना के लौटते समय विद्रोही महाबत ख़ाँ ने जहाँगीर को पकड़ लिया पर उन्हें क़ैद नहीं रख सकने के कारण वह भाग गया। नूरजहाँ ने ख़ानख़ानाँ को बारह लाख रुपया और सेना देकर महाबत ख़ाँ पर भेजा पर वह दिल्ली पहुँचकर बहत्तर वर्ष की अवस्था में संवत् १६८६ वि० में संसार से चल बसे। 'ख़ाने सिपहसालार को' * वाक्य से ख़ानख़ानाँ की मृत्यु का वर्ष निकलता है और उसका अर्थ है कि सेनापति ख़ाँ कहाँ है ?

ख़ानख़ानाँ ने अकबर के समय में तीन भारी कार्य किए थे जो गुजरात और सिंध की विजय तथा सुहेल खां बीजापुरी की पराजय हैं। जहाँगीर के समय यद्यपि वह उसी पदवी पर स्थित रहे परंतु वह विश्वास और प्रतिष्ठा जो उनकी अकबर करता था नहीं रह गई। तीस वर्ष तक ख़ानख़ानाँ दक्षिण में रहे और दखिनी सुलतान और सर्दार इनसे मित्रता रखने लगे थे जिस कारण प्रत्येक मुग़ल शाहज़ादे और सर्दार ने इन्हें विद्रोही लिखा था यहाँ तक कि अबुलफ़ज़ल ने भी इन पर विद्रोह का

*६०८ + १ + ५० + ६० + २ + ५ + ६० + १ + ३० + १ + २०० + २० + ६ = १०३६ हि०।

अपवाद लगाया था। ख़ानख़ानाँ के नौकर मुहम्मद मासूम ने जहाँगीर से अर्ज़ किया कि ख़ानख़ानाँ और मलिक अंबर के बीच का पत्रोत्तर लखनऊ के अब्दुस्सलाम के पास है जिसके खोज पर महावत खाँ नियुक्त हुए थे। अब्दुस्सलाम ने सब कष्ट सहकर भी एक अक्षर नहीं बतलाया।

ख़ानख़ानाँ बहुत से मनुष्यों को राजधानी और दूसरे स्थानों पर नियुक्त रखते थे जहाँ का वृत्तांत पता लगाकर वे बराबर लिखा करते थे जिससे उन्हें चारों ओर की खबर रहती थी। ख़ानख़ानाँ फ़ारसी, अरबी, तुर्की, संस्कृत और हिंदी के पूरे विद्वान थे और कई देशी भाषाएँ भी जानते थे। कवि भी अच्छे थे। कविता में यह अपना उपनाम रहीम या रहिमन रखते थे। यह बड़े दानी और गुणग्राहक थे और अकबर के समान इनके दरबार में भी बहुत कवि और गुणी रहा करते थे। अब्दुल बाक़ी नामक विद्वान ने इनके नाम पर मआसिरे-रहीमी नामक इतिहास लिखा है जिसमें मुसलमानों के भारत में आने के समय से अकबर तक का वृत्तांत है। इनके दान की अनेक कथाएँ हैं, जैसे गंग कवि को केवल एक छंद पर छत्तीस लाख रुपया पुरस्कार दे दिया था। अपमानित अवस्था में दान नहीं दे सकने के कारण इन्हें क्लेश होता था जिसपर इन्होंने कई दोहे बनाए हैं।

बैराम ख़ाँ शीआ मुसलमान थे परंतु यह सुन्नी थे। कुछ मत ऐसा भी है कि यह केवल प्रकट में सुन्नी बने हुए थे और गुप्त रूप से अपने पिता के ही मत को मानते थे। जो कुछ हो पर इनकी राम और कृष्ण पर भी प्रगाढ़ भक्ति थी जिसके साक्षी इनके कई दोहे आदि हैं।

इनको चार पुत्र थे जो सब इनके सामने ही गत हो चुके

थे। दो का वृत्तांत ऊपर लिखा जा चुका है। जब शाहजहाँ ने दाराब ख़ाँ को बंगाल का सूबेदार बनाया था तब उसके स्त्री, एक पुत्र, एक पुत्री और शाहनवाज़ ख़ाँ के एक पुत्र को ज़मानत में अपने पास रख लिया था। दाराब ख़ाँ ने शाहजहाँ के टॉस युद्ध में परास्त होकर भागने पर उनका साथ नहीं दिया और पर्वेज़ और महावत ख़ाँ के हाथ वह पकड़ा गया। इन दोनों ने जहाँगीर के इच्छानुकूल दाराब ख़ाँ के सिर को कपड़े में लपेटकर ख़ानख़ानाँ के पास कैदखाने में तर्बूज़ के नाम पर भेंट स्वरूप भेज दिया। ख़ानख़ानाँ ने उसे देखकर केवल इतना कहा कि तर्बूज़ेशहीदी है। इसके पहले ही दाराब ख़ाँ और शाहनवाज़ ख़ाँ के पुत्र मारे जा चुके थे। चौथा पुत्र अमरुल्ला जो दासी-पुत्र था जवानी में मर गया था।

ख़ानख़ानाँ ने बाबर के आत्मचरित्र का तुर्की भाषा से फ़ारसी में बहुत उत्तम और शुद्ध अनुवाद किया है। इसकी पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। संस्कृत में इन्होंने खेटकौतुकम् नामक पुस्तक लिखी है जिसमें आठों ग्रहों के बारहों स्थान के फल एक एक श्लोक में दिए हैं जिससे ज्ञात होता है कि वह ज्योतिष शास्त्र अच्छी तरह जानते थे। वह फारसी भाषा के भी अच्छे कवि थे। उन्होंने एक दीवान बनाया है। हिंदी भाषा में रहीम सतसई, बरवै नायका-भेद, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी, और शृंगार सोरठ नाम की पांच पुस्तकें इनकी बनाई हुई कही जाती हैं, पर लगभग तीन सौ दोहे, बरवै नायका भेद, शृंगार सोरठ के छ सोरठे और मदनाष्टक को छोड़कर और कुछ प्राप्त नहीं है। इनके दोहे सांसारिक नीति, अनुभव, मान, सत्संग, और कुसंग आदि विषयों पर अनुपम और अपूर्व हैं। इनकी भाषा भी बड़ी

मनोमोहिनी है। ख़ानख़ानाँ ने रहीम काव्य संस्कृत में लिखा है जो अप्राप्य है पर उसके कुछ श्लोक जो मिले हैं, संग्रह में दिए गए हैं।

रहिमन-विलास

दोहावली

मंगलाचरण

तैं* रहीम मन आपनो, कीन्हो चारु चकोर।
निसि वासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर ॥१॥

दोहा

अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल ॥२॥
अधम वचन केको फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह ॥३॥
अनकीन्हीं बातैं करै, सोवत जागै जोय।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय ॥४॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥५॥
अनुचित वचन न मानिए, जदपि गुराइस गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥६॥
अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥७॥

---

* पाठा० जिहि।

अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥८॥
अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥९॥
अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, मांगता, काम-आतुरी नारि ॥१०॥
असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गए, पारासर के नाज ॥११॥
आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिन मिले, धिग जीवन जग माँहिं ॥१२॥
आप न काहू काम के, डार पात फल फूल*।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़† बबूल ॥१३॥
आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु-सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यों, थामे बरैं बरेह ॥१४॥
उरग, तुरँग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथिआर।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥१५॥
ऊगत जाहि किरन सों, अथवत ताही काँति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै, बढ़त एकही भाँति ॥१६॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहिं फलहिं अघाय ॥१७॥
ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं ॥१८॥
अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाद।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥१९॥
अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।

* पाठा० मूल † पाठा० कूर।

हस्ती-ढका, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥२०॥
अंतर दाव लगी रहै, धुँआ न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपनो, कै जा सिर बीती होय ॥२१॥
कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥२२॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥२३॥
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय ॥२४॥
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन* हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को क्रूर† ॥२५॥
करमहीन रहिमन लखो, धंसो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥२६॥
कहि रहीम या जगत तें, प्रीति गई दै टेर।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर ॥२७॥
कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति‡ होय।
तन-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय ॥२८॥
कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात ॥२९॥
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत ॥३०॥
कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥३१॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥३२॥

* पाठा०—गुनी। † पाठा०—यहि प्रकार हम क्रूर। ‡ पाठा०—निधि।

कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिले, तासों कहा बसाय ॥३३॥
कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय ॥३४॥
काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर ॥३५॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥३६॥
काह करौं बैकुंठ लै, कलपवृच्छ की छाँह।
रहिमन दाख सुहावनो, जो गल पीतम-बाँह ॥३७॥
काह कामरी पामड़ी, जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिले अनाज ॥३८॥
कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ॥३९॥
कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर ॥४०॥
कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछिताय।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय ॥४१॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि,* गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी,† पर घर गए रहीम ॥४२॥
खरच बढ्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन ॥४३॥

---

(४०) यह दोहा छंदविनोद में भी है और रहिमन के स्थान पर 'जैसे' है।

* पाठा०—जाय समानी उदधि में,

† पाठा०—काकी महिमा नहिं घटी,

खीरा सिर तें काटिए, मलियत * नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥४४॥
खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आजकाल मोहन गही, बंस-दिया की रीति ॥४५॥
खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥४६॥
गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलवधू, पर-घर जात लजाय ॥४७॥
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार कर, और न कछू उपाव ॥४८॥
गुन से लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥४६॥
गुरुता फवै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि ॥५०॥
चरन छुए मस्तक छुए, तेहु नहिं छाँड़ति पानि।
हियो छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि ॥५१॥
चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय ॥५२॥
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस † ॥५३॥
छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥५४॥

---

* पाठा०—भरिए।

† पाठा०—आए राम रहीम कवि, किए जती को भेष।
जाको बिपता परति है, सो कटती शुब देस.॥

छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बांधियत, लै दमरी की मेख ॥५५॥

जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुन सिर चोट ॥५६॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिन हित होय ॥५७॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥५८॥

जलहि मिलाय रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर।
अंगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आंच की भीर ॥५९॥

जहां गांठ तहं रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँड़ए तर की गांठ में, गांठ गांठ रस होय ॥६०॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥६१॥

जे गरीब पर हित करें*, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग ॥६२॥

जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥६३॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं ॥६४॥

जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥६५॥

---

* पाठा० को आदरैं।

(६३) तुलसी सतसई में इसी भावार्थ का यह दोहा भी है—

होहिं बड़े लघु समय लह, तौ लघु सकहिं न काढ़ि।
चंद दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह ॥६६॥
जैसी तुम हम सों करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर ॥६७॥
जो अनुचित-कारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम ॥६८॥
जो घरही में घुसि रहे, कदली सुवन सुडील।
तो रहीम तिनके भले, पथ के अपत करील ॥६९॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥७०॥
जो बड़ेन को लघु कहैं, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥७१॥
जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पार तें, सो रहीम बहि जाय ॥७२॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन बिष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥७३॥
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय *।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय † ॥७४॥
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल ‡ ॥७५॥
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत-गति सोय।
बारे उजिआरो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥७६॥

---

* पाठा० छोटो चढ़ै, बढ़त करत उतपात।

† पाठा० तिरछो तिरछो जात। ‡ पाठा० तौ कत मातहिं दुख दियो, गिरवर धरि गोपाल।

(७२) पाठा०—तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पार ते, तौ रहीम बहि जाय॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अंधेरो होय ॥७७॥
जो रहीम जग मारियो, नैनबान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गए, चरन कमल की ओट ॥७८॥
जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट-ओट।
समय परे ते होत हैं, वाही पट की चोट ॥७९॥
जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आँस गारिबो खीस ॥८०॥
जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥८१॥
जो रहीम होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि भानतो, आप बड़ाई साथ ॥८२॥
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यौं नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥८३॥
टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार ॥८४॥
तन रहीम है कर्म-बस, मन राखो ओहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥८५॥
तबहीं लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥८६॥
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सुचहि सुजान ॥८७॥
तासों ही कछु पाइए, कीजै जाकी आस।

(७९) इसका पाठ यों भी है—

जेहि अंचल दीपक दुरो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, शत्रु मित्र ह्वै जात ॥

रीते सरवर पर गए, कैसे बुझै पिआस ॥८८॥
तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माहिं खुल जाय ॥८९॥
थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय * ।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय ॥९०॥
दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं ॥९१॥
दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबंधु से बंधु ॥९२॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ॥९३॥
दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥९४॥
दुख नर सुनि हाँसी करै, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करैं, ऐसे वे रघुबीर ॥९५॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥९६॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं बित हानि को, जो न होय हित हानि ॥९७॥
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहिं ॥९८॥

---

* रहीम ने हनुमान जी के पहाड़ उठाने पर दूसरा भाव भी घटाया है, जैसे—

ओछो काम बड़े करै, तो न बड़ाई होय ॥

इसमें हनुमान जी की बड़प्पन दी है।

(९८) हंसबिनोद में भी यह दोहा है जिसमें केवल इतना पाठांतर है—भले बुरे सब एक से।

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलवधू, चिथड़न माँह समात ॥९९॥
धन दारा अरु सुतन सो, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त* ॥१००॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥१०१॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत † पिआसो जाय ॥१०२॥
धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह ॥१०३॥
धूर धरत नित सीस पै, ‡ कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज ॥१०४॥
नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूखही लाग ॥१०५॥
नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥१०६॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥१०७॥
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥१०८॥
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन ॥१०९॥

---

* पाठा०—र्यों, रहत लगाए चित्त। क्यों रहीम लोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त॥

† पाठा०—पीअ।

‡ पाठा०—गज रज ढूंढत गजिन में।

पन्नगबेलि पतिब्रता, रति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥११०॥
परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥१११॥
पसरि पत्र झंपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥११२॥
पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन ॥११३॥
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥११४॥
पुरुष पूजैं देवरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहँ रहीम दोउन बनै, पड़ो बैल को साथ ॥११५॥
प्रीतम * छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय † ॥११६॥
फरजी साह न हो सकै, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सो, प्यादो होत वजीर ‡ ॥११७॥

---

(११३) तुलसीदास जी की सतसई का यह दोहा इसी आशय का है—

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलिदहू के कहु कौन ॥

(११४) तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अबतो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहै कौन ॥

* पाठा० मोहन † पाठा०—ज्यों, पथिक आय फिरि जाय ॥

‡ पाठा०—रहिमन सीधी चाल सों, प्यादो होत वजीर।
फरजी मीर न हो सके, टेढ़ी के तासीर ॥

बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै बलाय ॥११८॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सो कब हुतो, कहु रहीम पहिचानि ॥११९॥
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथ हहरि कै, दयो दांत द्वै काढ़ि ॥१२०॥
बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥१२१॥
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरा मोल ॥१२२॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥१२३॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥१२४॥
बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भय भोर ॥१२५॥
भजों तो काको मैं भजों, तजों तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान ॥१२६॥
भलो भयो घर ते छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत ॥१२७॥
भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।

---

(१२३) छंद का एक दोहा इसी आशय का है—

दुर्जन के संसर्ग तें सज्जन लहत कलेस।
ज्यौं दसमुख अपराध तें, बंधन लह्यो जलेस ॥

(१२८) पाठा०—ताके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस ?
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥

पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार ॥१२८॥
भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥१२९॥
भावी या उनमान की, पंडव वनहिं रहीम।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, बरु है संभु अजीम ॥१३०॥
भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥१३१॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ॥१३२॥
मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय ॥१३३॥
मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥१३४॥
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥१३५॥
मंदन के मरिहू गए, औगुन गुनन सराहि।
ज्यों रहीम बांधहु बंधे, मरहा है अधिकाहि ॥१३६॥
महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन वैराट घर, रहे नारि के भेष ॥१३७॥
मांगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥१३८॥
मांगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
मांगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥१३९॥
मानसरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता-भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक-बालकनहिं जोग ॥१४०॥
मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस।

बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो सीस ॥१४१॥
माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल औार।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपुने ठौर ॥१४२॥
मुकता कर, करपूर कर, चातक-जीवन जोय *।
येतो बड़ो रहीम जल, ब्याल-बदन विष होय † ॥१४३॥
मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु, गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग ॥१४४॥
मूढ़मंडली में सुजन, ठहरत नहीं विसेषि।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि ॥१४५॥
जद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत सरिताल।
रहिमन मानसरोवरहिं, मनसा करत मराल ॥१४६॥
यह न रहीम सराहिए, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए, हारि होय कै जीत ॥१४७॥
यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत होतही होय ॥१४८॥
यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर, कमान के, नए ते अवगुन होय ॥१४९॥
याते जान्यों मन भयो, जरि बरि भस्म बनाय।
रहिमन जाहि लगाइए, सो रूखो है जाय ॥१५०॥

---

* पाठा० चातक तृप हर सोय। † पाठा० भुजग परे विष होय।

(१४३) इसी भाव का सूरदासजी का एक दोहा है:—

सीप गयो मुकता भयो, कदली भयो कपूर।
अहि-फन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर॥

(१४६) इसी आशय का तुलसीदासजी का निम्नलिखित दोहा है:—

जद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रसताज।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल॥

यं रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यों तिय कुच आपन गहे, आप बड़ाई आपु ॥१५१॥
यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग-व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥१५२॥
यों रहीम तन हाट में, मनुआ गयो बिकाय।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नाँय ॥१५३॥
यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सों, अथवत ताही भाँति ॥१५४॥
रन, बन, व्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥१५५॥
रहिमन याती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सैंजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥१५६॥
रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह ॥१५७॥
रहिमन अपने * पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अन खाए रहे, तोसों को † अनखाय ॥१५८॥
रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़ कंज करीर ॥१५९॥
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥१६०॥
रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥१६१॥
रहिमन उजली प्रकृत को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥१६२॥

---

* पाठा०—मैं या † पाठा० का काहू।

रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन पड़े पहार ॥१६३॥
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भयो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति बिपरीति ॥१६४॥
रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥१६५॥
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१६६॥
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दांत दिखावत दीन है, चलत घिसावत नाक ॥१६७॥
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करैं, भरे बिगारत दीठ ॥१६८॥
रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक ॥१६९॥
रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखन-हार है, माखन-चाखन-हार ॥१७०॥
रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥१७१॥
रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥१७२॥
रहिमन घरिया रहंट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावे पीठ ॥१७३॥
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नांद लै लेइ ॥१७४॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥१७५॥

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम ॥१७६॥

रहिमन जगत-बड़ाइ की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि ॥१७७॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दसानन अछत ही, कपि लागे गथ लेन ॥१७८॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकास लौं, क्यों न कालिमा होय ॥१७६॥

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिर कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय ॥१८०॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगे सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥१८१॥

रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रसमरा, रस काहे ना होय ॥१८२॥

रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।
जो बासर को निसि कहै, तौ कचपची दिखाव ॥१८३॥

रहिमन ठठरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गांठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि ॥१८४॥

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥१८५॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥१८६॥

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन-बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय ॥१८७॥

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुंह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को ब्याह ॥१८८॥

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग ॥१८९॥
रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नलराज ॥१९०॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥१९१॥
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गांठ पड़ जाय ॥१९२॥
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥१९३॥
रहिमन निज मन की विथा, मनही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ॥१९४॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि ॥१९५॥
रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ बिकार।
नीर चोरावति संपुटी, मारु सहत घरिआर ॥१९६॥
रहिमन पर-उपकार के, करत न यारी बीच।
माँस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच ॥१९७॥
रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥१९८॥
रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥१९९॥

---

(१९५) वृंद ने इस भाव को यों कहा है—
जिहि प्रसंग दूषन लगै, तजियै ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥२००॥
रहिमन व्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पाँयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय ॥२०१॥
रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥२०२॥
रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥२०३॥
रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥२०४॥
रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात ॥१०५॥
रहिमन मनहिं लगाइ कै, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ॥२०६॥
रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव ॥२०७॥
रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगन को गए, धरि बावन को रूप ॥२०८॥
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायनहू को भयो, बावन आँगुर गात ॥२०९॥
रहिमन या तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर ॥२१०॥
रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियां निरखि, आँखिन को सुख होत ॥२११॥
रहिमन रहिबो वा भलो, जौ लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥२१२॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥२१३॥
रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय ।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥२१४॥
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय ।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय * ॥२१५॥
रहिमन रिस को छाँड़िकै, करौ गरीबी भेस ।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥२१६॥
रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि ।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥२१७॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पिअतहू, साँप सहज धरि खाय ॥२१८॥
रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत ।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥२१९॥
रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार ।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥२२०॥
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान ।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ विषान ॥२२१॥
रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥२२२॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥२२३॥
रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारंबार ।
बिछुरे मानुष फिरि मिलें, यहै जान अवतार ॥२२४॥

---

* पाठा०—कहि रहीम नहिं चेत है, रह्यो विषय लपटाय ।
घास चरै पसु आपते, गुड़ गौंजाए खाय ॥

रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागो नैन।
सहि के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन ॥२२५॥
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपुने हाथ ॥२२६॥
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥२२७॥
राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहि आपुनो, जनम गँवायो बादि ॥२२८॥
रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥२२९॥
रूप कथा पद चारु पट, कंचन दोहा* लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम बिसाल ॥२३०॥
रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय ॥२३१॥
लालन † मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥२३२॥
लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु-स्थान ॥२३३॥
बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ॥२३४॥
बहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥२३५॥
बिरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥२३६॥

* पाठा०—दूबा। † रहिमन।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥२३७॥
सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइकै, को करि रहा मुकाम ॥२३८॥
सबको सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥२३९॥
सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सोई जगीरैं खाय ॥२४०॥
समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥२४१॥
समय परे ओछे वचन, सब के सहे रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥२४२॥
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥२४३॥
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥२४४॥
सर सूखे पच्छी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥२४५॥
स्वारथ रचत रहीम सब, औगुनहू जग माँहि।
बड़े बड़े बैठे लखौ, पथ रथ-कूबर-छाँहि ॥२४६॥
स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त ॥२४७॥
साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को, बैरी करै बखान ॥२४८॥
सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥२४९॥

संतत संपति जान के, सब को सब कुछ देत* ।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥२५०॥
संपति भरम गंवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं ।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माँहिं ॥२५१॥
ससि की सीतल चांदनी, सुंदर सबहिं सुहाय ।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय ॥२५२॥
ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान, सनेह रहीम† ।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥२५३॥
सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक ।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥२५४॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर ।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥२५५॥
हित रहीम इतऊ करै, जाकी जहाँ बसात ।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहे कहन को बात ॥२५६॥
होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदाचि घटि जाय ।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय ॥२५७॥
होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर ।
बढ़िहू सो बिनु काजही, जैसे तार खजूर ॥२५८॥

सोरठा

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों ।
तातो जारै अंग, सीरे पै कारो लगे ॥२५९॥
रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं ।
जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥२६०॥

---

* पाठा० संप्रति संपतिवान को, सब कोऊ बसु देत ।

† पाठा० सुकेस के स्थान पर सँकोच और मान के स्थान पर साज ।

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं ॥२६१॥
रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥२६२॥
रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़े फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेर आय बंधन परै ॥२६३॥
रहिमन मोंहिं न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥२६४॥
बिंदु मों सिंधु समान, को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आपतें ॥२६५॥

बरवै नायिका-भेद

[दोहा]

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद ।
विरच्यो यहै विचारि कै, यह बरवै रस छंद ॥

[उत्तमा]

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिस कीन ।
बिहसत चनन चउकिया, बैठक दीन ॥ १ ॥

[मध्यमा]

बिनु गुन पिय-उर हरवा, उपटेउ हेरि ।
चुप ह्वै चित्र-पुतरिया, रहि मुख फेरि ॥ २ ॥

[अधमा]

बेरिहि बेर गुमनवा, जनि करु नारि ।
मानिक औ गजमुकुता, जौ लगि बारि ॥ ३ ॥

[प्रेमगर्विता]

आपुहि देत जवकवा, गूँदत हार ।
चुनि पहिराय चुनरिया, प्रान-अधार ॥ ४ ॥
अवरन पाय जवकया, नाइन दीन ।
मुहि पग आगर गोरिया, आनन कीन ॥ ५ ॥

[रूपगर्विता]

खीन मलिन विखभैया, औगुन तीन ।
मोहिं कहत बिधुबदनी, पिय मतिहीन* ॥ ६ ॥

---

* पाठा०—पिय कह चंदबदनिया, अति मतिहीन ।

दातुल भैंस सुगरुवा, निरस पखान ।
यह मधु भरल अधरवा, करसि गुमान ॥ ७ ॥

[अन्य सुरतदुःखिता]

बालम अस मन मिलियउँ, जस पय पानि ।
हंसिनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥ ८ ॥

[मुग्धा]

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ ९ ॥
लागेउ आन नवेलियहि, मनसिज बान ।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान ॥१०॥

[अज्ञात यौवना]

कवन रोग दुहुँ छतिया, उपजेउ आय ।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय ॥११॥

[ज्ञात यौवना]

औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन ।
छुटि गा संग गोइयवाँ, नहि भल कीन ॥१२॥

[नवोढ़ा]

पहिरति चूनि चुनरिया, भूषन भाव ।
नैननि देत कजरवा, फूलनि-चाव ॥१३॥

[विश्रब्ध नवोढ़ा]

जंघन जोरति गोरिया, करति कठोर ।
छुअन न पावै पियवा, कहुँ कुच-कोर ॥१४॥

[मध्या]

रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय ।
चलत न पग-पैजनियाँ, मग अहटाय ॥१५॥

ढीलि आँखि जल अँचवति, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय ॥१६॥

[प्रौढ़ा रतिप्रीता]

भोरहि बोलि कोइलिया, बढ़वति ताप।
घरि घरि एक घरिअवा, रहु चुपचाप ॥१७॥

[परकीया]

सुनि सुनि कान मुरलिया, रागन भेद।
गैल न छाँड़ति गोरिया, गनति न खेद ॥१८॥
निसिदिन सासु ननदिया, मुहि घर हेर।
सुनइ न देति मुरलिया, मधुरी टेर ॥१९॥

[अनूढ़ा]

मोहि वर जोग कन्हैया, लागउँ पाय।
तुहु कुलपूज देवतवा, होहु सहाय ॥२०॥

[भूत सुरति-संगोपना]

चूनत फूल गुलववा, डार कटील।
टुटि गा वंद अँगियवा, फटि पट नील ॥२१॥
आयेसि कवनेउ ओरवा, सुगना सार।
परि गा दाग अधरवा, चोंच चोटार ॥२२॥

[वर्तमान सुरतिगोपना]

मैं पठयेउ जिहि कमवाँ, आयेसि साध।
छुटि गा सीस को जुरवा, कसि के बाँध ॥२३॥
मुहि तुहि हरवर आवत, भवपथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद ॥२४॥

[भविष्य सुरतिगोपना]

होइ कत आइ बदरिया, बरखहि पाथ।
जैहौं घन अमरैया, सुगना साथ ॥२५॥

जैहौं चुनन कुसुमियाँ, खेत बड़ि दूर।
नौआ केरि छोहरिया, मुहिं संग कूर ॥२६॥

[क्रिया विदग्धा]

बाहिर लै के दियवा, बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देति बुझाय ॥२७॥

[वचन विदग्धा]

तनिक सी नाक नथुनियाँ, मित हित नीक।
कहति नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥२८॥

[लक्षिता]

आजु नयन के कजरा, औरे भाँति।
नागर नेह नवेलिया, सुदिने जाति ॥२९॥

[प्रथम अनुशयाना, भावी संकेतनष्टा]

धीरज धरु किन गोरिया, करि अनुराग।
जात जहाँ पिय देसवा, घन वन बाग ॥३०॥
जनि मरु रोय दुलहिया, करि मन ऊन।
सघन कुंज ससुररिया, औ घर सून ॥३१॥

[द्वितीय अनुशयाना, संकेत विघट्टना]

जमुना तीर तरुनियाँ, लखि भो सूल।
झरि गा रूख वेहलिया, फुलत न फूल ॥३२॥
ग्रीषम दवत दवरिया, कुंज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनिअहिं, बाढ़ी पीर ॥३३॥

[तृतीय अनुशयाना, रमणगमना]

मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात।
फिरि फिरि तकति तरुनिया, मन पछुतात ॥३४॥
मिल उत ते फिरि आयेउ, देखु न राम।
मैं न गई अमरैया, लहेउ न काम ॥३५॥

[मुदिता]

जस मदमातल हथिआ, हुमकत जात।
चितवति जाति तरुनिया, मन मुसकाति ॥३६॥
चितवति ऊँच अटरिया, दहिने वाम।
लाखन लखति बिछियवा, लर्खा सकाम ॥३७॥
नेवतहि गइल ननदिया, मैके सासु।
दुलहिनि तोरि खबरिया, आवै आसु ॥३८॥
जैहौ काल नेवतवा, भव दुख दून।
गाँव करेसि रखवरिया, सब घर सून ॥३९॥

[सामान्या, गणिका]

लखि लखि धनिक नयकवा, बनवति भेप।
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख ॥४०॥

[मुग्धा प्रोपितपतिका]

कासो कहौं सँदेसवा, पिय परदेसु।
लगेहु चइत नहिं फूले, तेहि बन टेसु ॥४१॥

[मध्या प्रोपितपतिका]

का तुम जुगुल तिरियवा, झगरति आय।
पिय बिनु मनहुँ अटरिया, मुहि न सुहाय ॥४२॥

[प्रौढ़ा प्रोपितपतिका]

ते अब जासि बेइलिया, बरु जरि मूल।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल ॥४३॥

[मुग्धा खंडिता]

सखि सिख मान नवेलिया, कीन्हेसि मान।
पिय बिन कोपभवनवाँ, ठानेसि ठान ॥४४॥

सीस नवाय नयेलिया, निचवइ जोय ।
छितिखनि छोर छिगुरिया, सुसुकति रोय ॥४५॥

[मध्या खंडिता]

गिरि गइ पीय पगरिया, आलस पाइ ।
पवढ़हु जाइ बरोठवां, सेज डसाइ ॥४६॥
पोछहु अधर कजरवा, जावक भाल ।
उपजेउ पीतम छतिया, बिनु गुन माल ॥४७॥

[प्रौढ़ा खंडिता]

पिय आवत अँगनैया, उठि कै लीन ।
साथैं चतुर तिरियवा, बैठक दीन ॥४८॥
पौढ़हु पीय पलंगिया, मीजहुँ पाय ।
रैनि जगे कौ निंदिया, सब मिटि जाय ॥४९॥

[परकीया खंडिता]

जेहि लगि सजन सनेहिया, छुटि घरबार ।
आपन हित परिवरवा, सोच परार ॥५०॥

[गणिका खंडिता]

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल ।
लियेसि काढ़ि बइरिनिया, तकि मनिमाल ॥५१॥

[मुग्धा कलहांतरिता]

आयेहु अबहिं गवनवाँ, जुरुते मान ।
अब रस लागिहि गोरियहि, मन पछुतान ॥५२॥

[मध्या कलहांतरिता]

मैं मतिमंद तिरियवा, परलेउ भोर ।
तेहि नहिं कंत मनवलेउं, तोहि कछु खोर ॥५३॥

[प्रौढ़ा कलहांरिता]

थकि गइ मन वनहरिया, फिरि गा पीय ।
मैं उठि तुरित न लायेउं, हिमकर हीय ॥५४॥

[परकीया कलहांतरिता]

जेहि लगि कीन विरोधवा, ननद जिठानि ।
रखिउ न लाय करेजवा, तेहि हित जानि ॥५५॥

[गणिका कलहांतरिता]

जिहि दीन्हेउ बहु बिरियाँ, मुहि मनिमाल ।
तिहि ते रूठेउँ सखिया, फिरि गए लाल ॥५६॥

[मुग्धा विप्रलब्धा]

लखे न कंत सहेटवा, फिरि दुवराय ।
धनियां कमलवदनियां, गइ कुम्हिलाय ॥५७॥

[मध्या विप्रलब्धा]

देखि न केलि-भवनवा, नंदकुमार ।
लै लै ऊँचि उससवा, भइ विकरार ॥५८॥

[प्रौढ़ा विप्रलब्धा]

देखि न कंत सहेटवा, भा दुख पूर ।
भौ तन नैन कजरवा, है गो भूर ॥५९॥

[परकीया विप्रलब्धा]

वैरिन भा अभिसरवा, अति दुखदानि ।
प्रातउ मिलेउ न मितवा, भइ पछितानि ॥६०॥

[गणिका विप्रलब्धा]

करिके सोरह सिंगरवा, अलर लगाइ ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥६१॥

[मुग्धा उत्कंठिता]

भा जुग जाम जमिनिया, पिय नहिं आय ।
राखेउ कवन सवतिया, रहि बिलमाय ॥६२॥

[मध्या उत्कंठिता]

जोहति तीय अवनवा, पिय की बाट ।
बेचेउ चतुर तिरियवा, केहि के हाट ॥६३॥

[प्रौढ़ा उत्कंठिता]

पियपथ हेरनि गोरिया, भा भिनुसार ।
चलहु न करिहि तिरियवा, तुव इतबार ॥६४॥

[परकीया उत्कंठिता]

उठि उठि जात खिरिकिया, जोहति बाट ।
कतहुँ न आवत मितवा, सुनि सुनि खाट ॥६५॥

[गणिका उत्कंठिता]

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाइ ।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ ॥६६॥

[मध्या वासकसज्जा]

सुभग बिछाय पलँगिया, अंग सिँगार ।
चितवति चौंकि तरुनिया, दै दृग द्वार ॥६७॥

[प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका]

बन घन फूलहि टेसुआ, बगिअनि बेलि ।
चलेउ बिदेस पियरवा, फगुआ फेलि ॥६८॥

[परकीया प्रवत्स्यपतिका]

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि ।
पिय की सुरति गगरिया, रहि मग लागि ॥६९॥

[गणिका प्रवत्स्यत्पतिका]

पीतम इक सुमिरिनिया, मुहि देइ जाहु।
जेहि जप तोर बिरहवा, करव निवाहु ॥७०॥

[मुग्धा आगतपतिका]

बहुत दिवस पर पियवा, आयेउ आज।
पुलकित नवल दुलहिया, कर गृह-काज ॥७१॥

[मध्या आगतपतिका]

पियवा आय दुअरवा, उठि किन देख।
दुरलभ पाय बिदेसिया, मुद अवरेख ॥७२॥

[प्रौढ़ा आगतपतिका]

आवत सुनत तिरियवा, उठि हरषाइ।
तलफत मनहुँ मछुरिया, जनु जल पाइ ॥७३॥

[परकीया आगतपतिका]

पूछन चली खबरिया, मितवा तीर।
हरखित अतिहि तिरियवा, पहिरत चीर ॥७४॥

[गणिका आगतपतिका]

तौ लगि मिटिहि न मितवा, तन की पीर।
जौ लगि पहिर न हरवा, जटित सुहीर ॥७५॥

[नायक]

सुंदर चतुर धनिकवा, जाति कै ऊंच।
केलि-कला परबिनवा, सील समूच ॥७६॥

[मानी]

अब भरि जनम सहेलिया, तकब न ओहि।
ऐंठलि गइ अभिमनिया, तजि गइ मोहि ॥७७॥

[नायक भेद]

पति, उपपति, बैसिकवा, त्रिविध बखान।

[पति]

विधि सो ब्याह्यो गुरु जन, पति सो जानि ॥७८॥
लैकर सुघर खुरुपिया, पिय के साथ।
छइबे एक छतरिया, बरखत पाथ ॥७९॥

[अनुकूल]

करत न हिय अपरधवा, सपनेहु पीय।
मान करन की बेरियाँ, रहि गइ हीय ॥८०॥

[दक्षिण]

सौतिन करहिं निहोरवा, हम कहँ देहु।
चुन चुन चंपक चुरिया, उच से लेहु ॥८१॥

[शठ]

छूटेउ लाज डगरिया, औ कुलकानि।
करत जात अपरधवा, परि गइ बानि ॥८२॥

[धृष्ट]

जहवाँ जात रइनियाँ, तहवाँ जाहु।
जोरि नयन निरलजवा, कत मुसुकाहु ॥८३॥

[उपपति]

झाँकि झरोखवन गोरिया, अँखियन जोर।
फिरि चितवनि चित मितवा, करति निहोर ॥८४॥

[वचन-चतुर]

सघन कुंज अमरैया, सीतल छाँह।
झगरति आय कोइलिया, पुनि उड़ि जाह ॥८५॥

[क्रिया-चतुर]

खेलत जानेसि टोलवा, नंदकिसोर।
छुइ वृषभानु-कुँअरिया, होइ गा चोर ॥८६॥

[वैसिक]

जनु अति नील अलकिया, बनसी लाय।

मो मन धारवधुअवा, मीन धभाय ॥८७॥
करि ले ऊँच अटरिया, पिय सँग केलि ।
कवधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥८८॥

[स्वप्नदर्शन]

पीतम मिले सपनवाँ, भे सुख-खानि ।
आनि जगाएसि चेरिया, भइ दुखदानि ॥८९॥

[चित्र-दर्शन]

पिय मूरति चितसरिया, चितवति बाल ।
चितवत अवध धसेरवा, जपि जपि माल ॥९०॥

[श्रवण]

आयेउ मीत विदेसिया, सुनु सखि तोर ।
उठि किन करसि सिँगरवा, सुनि सिख मोर ॥९१॥

[साक्षात दर्शन]

विरहिनि और विदेसिया, भो इक ठौर ।
पिय-मुख तकत तिरियवा, चंद चकोर ॥९२॥

[मंडन]

सखियन कीन सिँगरवा, रचि बहु भाँति ।
हेरति नैन अरसिया, मुरि मुसुकाति ॥९३॥

[शिक्षा]

छाकहु बइठ दुअरिया, मींजहु पाय ।
पिय तन पेखि गरमियाँ, बिजन डोलाय ॥९४॥
चुप होइ रहेउ सँदेसवा, सुनि मुसुकाय ।
पिय निज कर बिछुवनवा, दीन्ह उठाय ॥९५॥

[परिहास]

बिहँसति भौहँ चढ़ाये, धनुष मनीय ।
लावत उर अबलनियाँ, उठि उठि पीय ॥९६॥

शृंगार-सोरठा

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधौं शालिग्राम, रूपे के अरघा धरैं ॥ १ ॥

पलटि चली * मुसुकाय, दुति रहीम उपजाय अति।
बाती सी उसकाय, मानों दीनी दीप की ॥ २ ॥

दीपक हिए छिपाय, नवल वधू घर लै चली।
कर विहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥ ३ ॥

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि वरि वरि उठै ॥ ४ ॥

यक नाही यक पीर, हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न बेदन एक सी ॥ ५ ॥

तुरुक गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक जातक दूरि, देह दहै बिन देह को ॥ ६ ॥

* पाठा० पुलकि चलि।

मदनाष्टक

शरद् निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागीं।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ १॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन-वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥ २॥

दृग छकित छबीली छैलरा की छरी थी।
मणि-जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा॥ ३॥

कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुलफें।
अलि कलित बिहारी आपने जी की कुलफें॥
सकल शशि-कला को रोशनी-हीन लेखौं।
अहह ! ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं॥ ४॥

जरद बसन-वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुतियुग चपला से कुंडलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥ ५॥

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं।
बिलसति मन मेरे सुंदरी श्याम आँखैं॥ ६॥

भुजँग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं।
नटवर! तव मोहैं बाँकुरी मान भौंहैं॥
सुनु सखि! मृदुबानी बेदुरुस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥ ७॥

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥
इति वदति पठानी मनमथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ ८॥

फुटकर पद्य

[घनाक्षरी]
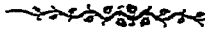
बड़ेन सों जान पहिचान कै रहीम काह,
जो पै करतार ही न सुख देनहार है?
सेवा हरि, सूरज सों नेह कियो याही हेत,
ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है॥
छीरनिधि माँहि धस्यो, शंकर के सीस धस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहै॥
बड़ो रीझिवार है, चकोर दरबार है,
कलानिधि सों यार तऊ चाखत अँगार है॥ १॥

[सवैया]

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन को लखिकै ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो।
ज्यों कमनीय दमानक में फिरि तीर लौं मारि लैजात निसानो॥२॥

दीन चहै करतार जिन्हें सुख सो तो रहीम टरै नहिं टारे।
उद्यम, पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहि हाथ पसारे॥
दैव हँसे अपनी अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे॥३॥

जेहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहि त्यागिकै ताही समै सो निकारि पिता बनबास दिया॥
कहे बीच रहीम रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो बिनु हार हिया।
बिधि यों न सिया रसबार सिया करबार सिया पियसार सिया॥४॥

[दोहा]

धम रहसी रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरै, नहचौ राखो राण॥ ५॥
तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होहिं ससि गैन।
तदपि अँधेरो है सखी, पीउ न देखै नैन॥ ६॥

[भजन]

छवि आवन मोहनलाल की।
लाल काछनी काछे कर मुरली पीत पिछौरी साल की॥
बंक तिलक केसर को किये, दुति मानो विधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छवि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सौं डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुतामाल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन-गोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की॥७॥

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि॥
यह दसननि-दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि।
वसुधा की वस-करी मधुरता सुधापगी बतरानि॥
चढ़ो रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल-थहरानि।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि।
छवि रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि॥ ८॥

(५) पाठा०—धर रहसी रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
अमर विशम्भर ऊपरें राखो नहचो राण॥

रहीम काव्य

[श्लोक]

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्णया भूमिका ।
व्योमाकाश खखांबराब्धि वसुवत् त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे ।
नोच्चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकां ॥ १ ॥

[अर्थ]

आपके प्रीत्यर्थ आजतक मैं नट के चाल पर आपकी इस भूमि पर लाया जाने से चौरासी लाख रूप धारण करता रहा। हे परमेश्वर ! यदि आप इसे (दृश्य) देखकर प्रसन्न हुए हों तो जो मैं मांगता हूँ सो दीजिए और नहीं प्रसन्न हों तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी इस पृथ्वी पर न लाया जाऊँ ।

[श्लोक]

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणीच पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
राधा गृहीत मनसे मनसे चतुभ्यं
दत्तं मया निज मनस्तदिदं गृहाण ॥ २ ॥

[अर्थ]

रत्नाकर अर्थात् समुद्र आपका गृह है और लक्ष्मी आप की गृहिणी है तब हे जगदीश्वर ! आपही बतलाइए कि आप को क्या देने योग्य बच गया ? राधिकाजी ने आपका मन हरण कर लिया है और मेरा मन मेरे पास है जिसे मैं आपको देता हूँ उसे ग्रहण कीजिए ।

[श्लोक]

अहिल्या पाषाणः प्रकृति पशुरासीत् कपिचमू
गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निज पदम् ॥
अहं चित्तेनाश्मः पशुरपि तवार्चादि करणे
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम् ॥ ३ ॥

[अर्थ]

अहिल्याजो पत्थर थी, बंदरों का समूह पशु था और निषाद चांडाल था पर तीनों को आपने अपने पद में शरण दिया। मेरा चित्त पत्थर है, आपके पूजन में पशु समान हूँ और कर्म भी चांडाल सा है इसलिए मेरा क्यों नहीं उद्धार करते। इसी भावार्थ का दोहा नं० १४४ भी है।

[श्लोक]

यद्यात्रया व्यापकता हताते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या।
ध्यानेन बुद्धेः परता परेशं जात्या जताजन्तु मिहार्हसित्वं ॥४॥

[अर्थ]

यात्रा करके मैंने आप की व्यापकता, भेद से एकता, स्तुति करके वाक्परता, ध्यान करके आपका बुद्धि से दूर होना और जाति निश्चित करके आपका अजातिपन नाश किया है सो हे परमेश्वर! आप इन अपराधों को क्षमा करो।

[श्लोक]

दृष्टात्तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरङ्गशायनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्ष विशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर ॥५॥

[अर्थ]

विचित्र वृक्षलता को देखने के लिए मैं बाग़ में गया था। वहाँ

कोई मृगशावकनयनी खड़ी फूल तोड़ रही थी। भौं रूपी धनुष से कटाक्ष रूपी बाण चलाकर उसने मुझे घायल किया था। तब मैं सदा के लिये मोह रूपी समुद्र में पड़ गया इससे हे हृदय धन्यवाद दो।

[श्लोक]

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरङ्गबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
तां दृष्ट्वा नवयौवना शशिमुखी, मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामि त्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले॥६॥

[अर्थ]

एक दिन संध्या के समय मैं बाग़ में गया था। वहाँ कोई मृगछौने के नेत्रों के समान आँखवाली खड़ी फूल तोड़ती थी। उस चंद्रमुखी नई युवती को देखकर मैं मोह में जा पड़ा। हे प्रिये! सुनो, कि तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता (इस लिए बतलाओ) कि तुम कैसे मिलोगी।

[श्लोक]

अच्युतचरण तरङ्गिणी शशिशेखर मौलि मालतीमाले।
मम तनु वितरण समये हरता देया न मे हरिता॥७॥

[अर्थ]

विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेवजी के मस्तक पर मालतीमाला के समान शोभित होने वाली हे गंगा जी! मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु। अर्थात् तब मैं तुम्हें शिर पर धारण कर सकूंगा। इसी अर्थ का दोहा नं० २ भी है।

टिप्पणी

दोहावली।

१. चकोर—विशेष पक्षी इसके दो गुण प्रसिद्ध हैं। प्रथम यह कि जब तक चंद्रमा दिखलाता है यह उसी की ओर देखता रहता है। इसका यह प्रेम एकांगी है। दूसरा गुण अग्नि खाना है। इसका कारण एक कवि यों बतलाता है कि चकोर ने यह जानकर कि चंद्रमा महादेवजी के मस्तक पर रहते हैं और महादेवजी भस्म रमाते हैं अग्नि खाकर अपनी शरीर को भस्म बनाना चाहा कि उसका भस्म ही कम से कम चंद्र के पास पहुँच सकेगा।

२. अच्युत-चरण-तरंगिणी—विष्णु भगवान के चरण से निकली हुई नदी अर्थात् गंगा जी।

शिव-सिर-मालति-माल—महादेवजी के मस्तक पर माला के समान शोभित रहने वाली अर्थात् गंगा जी।

इंदव-भाल—महादेवजी जिनके सिर पर चंद्रमा शोभित है।

हरि न बनायो......इंदव-भाल—हे गंगे! तुम्हारे अंक में मृत्यु होने पर तुम उसे विष्णु या महादेव बना देती हो। मेरी प्रार्थना है कि मुझे विष्णु मत बनाना क्योंकि तुम उनके चरण से निकली हो प्रत्युत महादेव बनाना कि तुम्हें शिर पर धारण करूं।

रहीम उपनाम इस दोहे में नहीं है पर एक श्लोक जिसका यह भावार्थ है खानखानाँ ने गंगाजी पर बनाया था इससे यह दोहा भी उनका हो सकता है। श्लोक संग्रह में दिया गया है।

३. ये—अधम वचन और ताड़ की छांह के लिए आया है।

४. अनकीन्हीं—नहीं किया हुआ।

जोय—जो

६. गुराइस गाढ़ि—गुड़ के ऐसा गाढ़ा।

८. अमरबेलि—अंबरबेलि, आकाशबेलि, अकासबौंर। सूत के समान पीली बेल होती है जो पेड़ों पर लिपटी मिलती है और जिस पेड़ पर होती है उसे सुखा डालती है। जड़, पत्ती कनखे कुछ नहीं होते। गरम होती है, बाल बढ़ाने की औषधि बनती है और हकीम वायु रोगों पर देते हैं।

१०. रिनिया—ऋण देने वाला।

११. असमय—बुरे दिन। इस दोहे के कथा का पता नहीं लगा।

१३. बबूल—इस वृक्ष की लकड़ी ईंधन के काम में आती है और इसमें से गोंद निकलता है।

१४. जीरन—जीर्ण का अपभ्रंश।

बरै—बट का अपभ्रंश जैसे बरसाइत में हुआ है।

बरोह—बट वृक्ष के डारों से जो जटाएं भूमि की ओर जाती हैं उन्हें बरोह कहते हैं।

बट वृक्ष के बरोहों के भूमि तक पहुँच जाने पर उस वृक्ष में नए जीवन का संचार हो जाता है जिससे वह जीर्ण नहीं हो सकता। वृद्ध वृक्ष के कष्ट के समय ये बरोह उसी प्रकार काम आए जिस प्रकार कष्ट में मित्र-प्रेम काम आता है।

१६. ऊगत—उदय होते हैं।

अथवत—अस्त होते हैं, डूबते हैं।

कांति—किरण।

१८. रहीम—इस शब्द का अर्थ दयावान, दयालु भी है। इस दोहे में रहीम शब्द दो बार आया है। दोहा बनाने के

समय रहीम अपनी वर्तमान अवस्था दर्शा कर कहते हैं कि अब मित्रता छोड़ो मैं पहले के समान नहीं रह गया अब मेरी ऐसी अवस्था हो गई है।

दर—शब्द फ़ारसी है जिसका अर्थ द्वार है।

मधुकरी—साधुओं की उस वृत्ति को कहते हैं जो सात गृहस्थों के द्वारों पर जाकर अपनी झोली में भिक्षा लेते हैं और उसीसे जीवन-निर्वाह करते हैं। मधुकर अर्थात् भौंरे के समान कई स्थानों का रस लेने के कारण उनकी वृत्ति मधुकरी कहलाई।

यार—(फा०) मित्र।

यह दोहा उस समय का बनाया हुआ ज्ञात होता है जब खानखानाँ जहाँगीर बादशाह की कोपाग्नि में पड़े हुए थे।

१६. अंजन—काजल।

किरकिरी—जो कण सहित है।

जिन नेत्रों से भगवान के दर्शन हुए उनमें मानों उनकी मूर्ति के बस जाने से एक तो स्थान नहीं और दूसरे किरकिरे कज्जल लगाने से उन्हें कष्ट होगा इस विचार से कवि ने सुरमा लगाने का निश्चित किया पर यह सोचकर रुक गए कि कहीं मूर्ति में कालख न लग जाय।

२०. रहीम कहते हैं कि चिकने पत्तों के पौधों को देख कर मत भूलो, हाथी का धक्का और कुल्हाड़ी सहने वाले पेड़ दूसरे हैं।

२२. कदली—केला का वृक्ष।

स्वाति—एक नक्षत्र है।

२३. कमला थिर न रहीम कहि—लक्ष्मी स्थिर क्या नहीं है ? इस प्रश्न के दो उत्तर रहीम ने दो दोहों में दिए हैं।

२४. फजीहत—(अरबी) फ़ज़ीहत अर्थात् बुरा नाम, कष्ट मिलना।

२५. निपुनई—योग्यता।

योग्य पुरुष के सामने जो गुण न रहने पर भी अपनी योग्यता का आडंबर दिखलाता है वह मानों वृक्ष पर चढ़कर पुकारता है कि हम दुष्ट हैं।

२८. द्युति—दीपशिखा, प्रकाश।

सनेह—स्नेह का अपभ्रंश। प्रेम, ममता।

एक दीपक से सब वस्तु प्रकाशित हो जाती है और यहाँ शरीर नेत्र रूपी दो दो दीपकों से प्रकाशित हो रहा है तब बतलाओ कि इसकी ममता कैसे छोड़ी जा सकती है।

२६. घट्टै बढ़ै उनको कहा—उनको घटने बढ़ने से क्या? या उनका क्या घटेगा और बढ़ेगा?

३०. कसौटी—एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर रगड़ कर सोने की परख की जाती है। यहां मित्रता की कसौटी को विपत्ति माना है।

कसे—सोने को कसौटी पर रगड़ने से खरा होना, विपत्ति में साथ देना। क्रिया—कसना अर्थात् कसौटी पर सोने को रगड़ना।

केतिक—[सं० कति + एक] कितना।

३१. अंत—मृत्यु के समय।

३२. केर—केला जिसका छिल्का खींचते ही अलग हो जाता है।

३४. बाय—वायु का अपभ्रंश। स्वांस।

३५. भंवरी—भौंरी घूमना, पाणिग्रहण के अनंतर जो सप्तपदी होती है। यहाँ केवल विवाह से अर्थ है।

३६ बाजू—(फ़ा० बाज़ू)—भुजा, डैना, पर।

बाज—(फ़ा० बाज़)—एक शिकारी चिड़िया है।

साहब—(अरबी)—स्वामी, परमेश्वर।

३७. कल्पवृक्ष—स्वर्ग का एक वृक्ष। समुद्र-मथन में निकले हुए चौदह रत्नों में से एक यह भी है जो इंद्र को दिया गया था। इस वृक्ष से जिस वस्तु के लिये प्रार्थना की जाय, उसे वह देता है।

दाख—(सं० द्राक्षा) किसमिस का पेड़।

३९. उरज—(सं० उरोज) स्तन, कुच।

४०. गैर—(अरबी ग़ैर) शत्रुता, वैर।

४५. खैंचि—खींचने से, प्रेम-आकर्षण करने से।

वंस-दिया—आकाश-दीप। कार्तिक मास में लोग प्रत्येक रात्रि को दीप बाँस के बनाए हुए लालटेनों में रख कर ऊँचे पर टाँगते हैं और इसके लिए लम्बे बांसों को एक सिरे पर कड़ी लगाकर खड़ा कर देते हैं। डोरी के सहारे ये लालटेन आवश्यकतानुसार खींचकर उतारे और चढ़ाए जाते हैं। खींचने से तो वह दूर भागते हैं और छोड़ देने से झट पास आ जाते हैं। भला यह प्रेम की कैसी चाल है। ऐसा मालूम होता है कि आजकल कृष्णजी ने आकाश-दीप की चाल सीख ली है।

कहा जाता है कि जब यह वृन्दावन कृष्ण-दर्शन के लिए गए थे तब मुसलमान होने के कारण यह मंदिर के बाहर ठहरा दिए गए थे। इस पर यह क्रोधित हो घूमकर बैठ गए तब भगवान् ने इन्हें स्वयं दर्शन दिया जिस पर इन्होंने यह दोहा और दो पद कहा था जो संग्रह में दिया गया है।

४६. खून—(फ़ा० ख़ून) रक्त, रक्तपात, किसी को मार डालना।

खुसी—(फ़ा० ख़ुशी) प्रसन्नता।

जहान—(फ़ा०) संसार, यहाँ लोक अर्थात् सभी मनुष्यों से अर्थ है।

४७. गरज़—(अरबी ग़रज़) स्वार्थ।

आप सों—स्वयं, आप ही।

४६. गुन—(सं० गुण) रस्सी, योग्यता।

५०. बतौरी—एक रोग है। शरीर में रक्त संचित होकर फोड़े की तरह उठ आता है जिसमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती और बराबर बना रहता है।

५३. अवध-नरेस—यहां श्रीरामचन्द्र से तात्पर्य है।

रीवाँ-नरेश से जब किसी याचक को एक लक्ष रुपया दिलवाया था तब उस अवसर पर यह दोहा बनाकर उनके पास भेजा था। उस समय बादशाही कोप के कारण यह स्वयं निर्धन हो रहे थे और याचक के माँगने पर विवश होकर उन्हें स्वयं याचक बनना पड़ा था।

५४. भृगु मारी लात—ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है इसकी परीक्षा भृगु मुनि ने की थी। ब्रह्मा प्रणाम न करने से और महेश कुछ कहने से क्रोधित हो गए पर विष्णु भगवान् हृदय पर लात मारने से भी प्रसन्न ही रहे। उल्टे ऋषि से पूछने लगे कि कहीं पैरों में चोट तो नहीं पहुँची और पैर के चिन्ह को जिसे भृगुलता कहते हैं अपने वक्षस्थल पर रखकर सहन-शीलता की पराकाष्ठा दिखला दी।

५५. रेख—रेखा, लकीर, रेखा खींचकर कहना अर्थात् निश्चित बात।

मेख—(फ़ा० मेख़) खूंटी।

५६ अगोट—(सं० अग्र + हिं० ओट) ओट, आड़, आश्रय, अवश्य।

गोट—(सं० गुटिका) चौपड़ का मोहरा, गोटी। गोटी फूटना—जुग फूटना। सुख दुख रूपी जुग के फूटने से दोनों नरद अर्थात् फुट गोटी मारी जाती है।

५९. जलहि........आंच की भीर।

दूध और जल का पारस्परिक प्रेम दिखलाया है। दूध पानी को अपने में मिलाकर अपने समान बना लेता है और जब लोग उसे आंच पर रखकर औटाते हैं तब पानी स्वयं जलकर दूध की रक्षा करता है। यह तो अर्थ हुआ, पर दूध का प्रेम कच्चा नहीं है इसलिए वह चुपचाप बैठा नहीं रहता प्रत्युत् क्रोध से उफनकर जल के शत्रु अग्नि को बुझाने का प्रयत्न करता है चाहे उस प्रयत्न में उसका सर्वस्व नाश हो जाय। पर चार बूंद जल छिड़क दीजिए झट उसका क्रोध शांत हो जाता है।

६०. गांठ—ईख की गांठ, मित्रता में गांठ पड़ जाना।

जोय—देखता है।

मँड़ए तर की गांठ—दूल्हा, दुलहिन की गांठ जो विवाह के समय में बांधी जाती है।

६१. जाल परे........छाड़त छोह।—एकांगी प्रेम है। जल को मछली से प्रेम न रहते भी मछली जल से प्रेम रखती है।

६२. कहां सुदामा..........जोग—श्रीकृष्ण भगवान ने सुदामा के समान दरिद्र ब्राह्मण के साथ मित्रता का निर्वाह किया था।

६३. जे रहीम........नखत ते बाढ़ि—गो० तुलसीदास जी के कथन 'समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाइँ' के अनुसार सदोष चंद्रमा बड़े होने के कारण निर्दोष छोटे छोटे तारों से बढ़कर माना जाता है।

६४. दाहे........सुलगहिं—जो प्रेमपाश में फँसे हुए हैं

उन्हें विरहाग्नि के जलने और मिलन में शांति पाने अर्थात् विरहाग्नि के बुझने के बहुत अवसर मिलते हैं।

६५. जेहि........अब कौन—अपनी आत्मा (परमेश्वर) से सुख दुःख कहने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उससे कुछ छिप नहीं सकता।

६७. करी—(सं०) हाथी, किया।

गजेन्द्रमोक्ष में जब हाथी मगर द्वारा पकड़ा गया तब उसके सुख के साथी साथ छोड़कर चले गए और उस कष्ट के समय ईश्वर ने ही उसकी रक्षा की।

६८. अनुचित-कारी—अयोग्य काम या अकर्तव्य करने वाले।

अंक—धब्बा, पाप, दुःख।

६९. कदली—केला।

सुडौल—सुगठित शरीर वाला।

करील—सं० करीर। ऊसर और कंकरीली भूमि में होने वाली एक कटीली झाड़ी जिसमें पत्तियां नहीं होतीं, केवल हरे रंग की बहुत सी पतली पतली डंठलें फूटती हैं। राजपुताने और ब्रज में बहुत होती है। फागुन और चैत में गुलाबी रंग के फूल आते हैं जिनके झड़ जाने पर गोल गोल फल लगते हैं जो टेंटी या कचड़ा कहलाते हैं। ये कसैले होते हैं और इनका अचार पड़ता है। लकड़ी के हलके सामान बनते हैं, रेशे की रस्सी बटी जाती है और फल दवा में काम लाया जाता है।

९०. भीम—युधिष्ठिर के छोटे भाई। जूए के अनतंर जब पांडव बारह वर्ष वनवास कर चुके थे तब एक वर्ष अज्ञातवास करने के लिए यह रूप भीम ने लिया था। यह कथा प्रसिद्ध है।

७१. उमगै—उमड़ै, बढ़ चलै, भरकर ऊपर उठै ।

७४. फ़रज़ी—शतरंज का एक मुहरा जिसे वज़ीर भी कहते हैं ।

७५. हवाल—(अरबी) वर्तमान अवस्था ।

गोवर्द्धन—एक पहाड़ी जो व्रज में है । गोवर्द्धन लीला प्रसिद्ध कथा है जिसमें श्रीकृष्णजी ने गोवर्द्धन पर्वत को अंगुली पर उठाकर इंद्र के कोप से व्रज की रक्षा की थी । कथा है कि जब हनुमान जी धवला गिरि को लंका ले जा रहे थे तब उसका एक शृंग व्रज में गिर पड़ा जो गोवर्द्धन कहलाया ।

७६. बारे—बालापन, लड़कपन, बालना, दीप जलाना ।

बढ़े—अवस्था बढ़ने पर, युवा होने पर, दीप बढ़ाना, बुझाना ।

गति......गति सोय—कपूत और दीप की समानता दिखलाई है ।

७८. नैनबान की चोट—काम-बाण अर्थात् कामिनियों के नैन-बाण ।

८१. मनसा—मन । केवल मानसिक पुण्य, पाप, दान आदि से कुछ नहीं होना दिखलाया है ।

८२. गति—शक्ति ।

८३. विषया—व्यसन , मोह आदि ।

८४. टूटे—जो किसी कारण बिगड़ जाँय या क्रोधित हो जाँय ।

८५. मन राखो ओहि ओर—मन को वश में रखो, कर्मानुसार मन को बढ़ाओ, अधिक नहीं ।

८६. जीबो—जीना ।

दीबो—देना ।

कुचित—[कु + उचित] अनुचित, बुरा।

धीम—धीमा, कम।

८८. रीते—सूखे, जिसमें जल नहीं, खाली।

९१. सरवर को कोउ नाहिं ?—तालाब जो दूसरों के लिए बारहो महीने जल संचित रखता है उसकी याद कोई नहीं करता।

चातक—विशेष पक्षी। यह स्वाति नक्षत्र के जल के लिए तरसता है।

९४. दीरघ—बड़ा, अधिक।

आखर—अक्षर का अपभ्रंश।

९६. घूर—गाँव आदि के पास का ऐसा स्थान जहां कतवार, कूड़ा फेंका जाता है।

९८. पिक—कोयल।

१०४. धूर धरत......गजराज—पहिले दो चरण में प्रश्न है और दूसरे दो चरण में उसका उत्तर है।

जेहि रज मुनि पत्नी तरी—वह रामचंद्र की चरण-धूलि जिससे गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्याजी का उद्धार हुआ था। रामायण में इसकी पूरी कथा है।

१०८. निज कर.........भावी के हाथ—कुछ आलसियों का कथन है कि तदबीर से तक़दीर बड़ी है इससे कुछ कर्म करना व्यर्थ है। रहीम के अनुसार कर्म करना आवश्यक है जिसका फल ही भावी कहलाता है। कर्म किए बिना कर्म का पता नहीं चल सकता।

११०. पन्नगबेलि—नागबेलि, पान की लता।

दहियान—जलाया गया अर्थात् नाश हुआ।

११२. पसरि—फैलकर।

झंपहि—पानी के ऊपर उठा देते हैं, छिपा लेते हैं।

पितहिं—यहां जल से अर्थ है।

११५. देवरा—भूत प्रेत आदि।

११७. शाह—(फ़ारसी) शतरंज का एक मोहरा जिसे मीर और बादशाह भी कहते हैं।

तासीर—(अरबी) असर करना, स्वभाव।

११८. माया—धन, ऐश्वर्य।

११७. हरि हाथी—गजेंद्रमोक्ष की कथा प्रसिद्ध है जिसमें गज की स्तुति सुनकर उसकी ग्राह से रक्षा करने के लिए भगवान ने हरि का अवतार धारण किया था।

१२१. राइ—एक मसाला जिसका दाना बहुत छोटा होता है। बीज के लिए उदाहरण रूप में काम लाया गया है।

१२३. सोस—फ़ारसी शब्द अफ़सोस का अपभ्रंश।

महिमा घटी......परोस—रावण के लंका में बसने के कारण समुद्र बाँधा गया।

१२६. भजों......आन—किसको भजें या किसको भुलावें? कोई दूसरा है कहाँ? इस दोहे से 'सोऽहं' की ध्वनि निकलती है।

१२८ भार—भारीपन, अहंकार, अधिक प्रज्वलित अग्नि, भाड़, बोझा।

१३३. फल—फल से यहां स्तन का अर्थ लिया है।

फूल—यहां फूल से कमल की माला का अर्थ लिया है।

१३४. दगन जो आदरैं—देखकर ही मित्रता और प्रेम का आरंभ होता है।

१३७. महि नभ सर पंजर कियो—अग्नि ने पेट-पीड़ा के कारण श्रीकृष्ण की आज्ञा से खांडव वन जलाया था जिसकी

इंद्र से रक्षा करने के लिए अर्जुन ने पृथ्वी से स्वर्ग तक तीरों का पिंजड़ा बना डाला था। भागवत में यह कथा विस्तार से दी है।

नारि के भेष—जब पांडवों ने अज्ञातवास लिया तब अर्जुन विराट के पुत्री को स्त्री-रूप में नृत्य-कला आदि सिखलाते थे।

१३८. बावन—(सं० वामन) अर्थात् बहुत नाटा मनुष्य, बावन अंगुल की शरीरवाला।

जब दानवों ने देवताओं को परास्त कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया तब भगवान ने वामनावतार धारण कर दानवराज बलि से तीन पग भूमि का दान मांगा जब वह यज्ञ कर रहा था। दान ले लेने पर वामन भगवान ने विराट रूप धारण कर तीन पग में कुल त्रैलोक्य नाप लिया था।

१३९. मांगत आगे......रघुनाथ—जिस प्रकार रामचंद्र ने विभीषण को बिना मांगे ही लंका के राजगद्दी का तिलक कर दिया था।

१४०. सफरिन—मछलियों से।

१४१. विष खाय के शंभु भए जगदीश—जब समुद्र-मंथन हुआ था तब उसमें से सबसे पहले हलाहल विष उत्पन्न हुआ जिससे संसार जलने लगा। तब महादेवजी की स्तुति की गई जिन्होंने उसे पान कर संसार की रक्षा की और जगदीश कहलाए।

राहु कटायो शीश—समुद्र-मंथन के अनंतर अमृत बाँटने में देवताओं और दैत्यों में झगड़ा हुआ तब भगवान से उसे बाँटने के लिये कहा गया। इन्होंने 'छोटे पानी बड़े पीढ़ा' की कहावत दैत्यों को समझाया और पहले देवताओं को अमृत पिलाने लगे। देवता और दैत्य पंक्ति बांधकर बैठे और जब अमृत पिलाते हुए भगवान दैत्यों की पंक्ति के पास आने लगे तब राहु नामक

दैत्य जो पास था उसने देखा कि अमृत का घड़ा खाली हो रहा है। उसने उनका कौशल समझ देवता का रूप धारण कर उनकी पंक्ति में जा बैठा और इस प्रकार उसने अमृत पान कर लिया। जब भगवान को मालूम हुआ तब चक्र द्वारा उसका सिर काट लिया पर अमृत पीने के कारण वह नहीं मरा और उसके दोनों भाग राहु तथा केतु कहलाए जाने लगे।

१४३. कर—संबंध-वाचक का।

१४४. गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या, बंदरों और निषाद का रामजी ने उद्धार किया और इन तीनों के गुण मेरे शरीर में हैं।

रहीम का एक श्लोक इसी संग्रह के पृ० ४२ में है जिसके आशय का यह दोहा है।

१४६. कूपवंत—गहरा, जिसमें गहरा कुंड हो।

सरिताल—झील, बहुत बड़ा तालाब।

मनसा—इच्छा।

१४६. चोर—यहां दुष्टों से अर्थ है।

नए—टेढ़ा होना, मीठा बोलना, विनम्र होना।

चीतां की कमर टूटने अर्थात् टेढ़ी होने से वह अहेर के योग्य नहीं रह जाता। दुष्ट यदि मीठा बोले तो अवश्य धोखा देगा। कमान टेढ़ी हो जाने पर अर्थात् खींची जाने पर हानि पहुँचाती है।

१५१. आप बड़ाई आप—स्वयं अपनी बड़ाई करना, आत्म-श्लाघा।

१५२. दाग—(फ़ा० दाग़) धब्बा, छापा।

घुड़ सवार सेना में यह नियम है कि सवारों का नंबर घोड़े पर छाप दिया जाता है। यह प्रथा पहले पहल अकबर के

समय में राजा टोडरमल ने चलाई थी जो आजतक प्रचलित है।

१५६. कानि—चाल, रीति जो सदा रही।

१५७. मृग—चंद्रमा के रथ में मृग जुते हुए हैं इससे वह ऊपर उछलता है।

वराह—वाराह भगवान पाताल से हिरण्याक्ष को मारकर लाए थे।

१५९. सेंहुड़—पौधे जिनके पत्ते कुछ लंबे होते हैं और उसका रस गर्म होता है जो बच्चों को दिया जाता है।

१६०. रुधिरै देत बताय—जिधर हरिन भागता है उधर का रास्ता अहेरी को उसीके रक्तबिंदु बतलाते हैं।

१६१. आँटा के लगे—मृदंग, जोड़ी आदि वाद्य यन्त्रों पर आँटा की गोल टिकी जमाई जाती है जिससे शब्द अच्छा निकलता है।

१६६. सेस—[सं० शेष] शेष भगवान, कुछ नहीं।

१६८. रीते—खाली रहने पर, भूखे रहने पर। 'बुभुक्षितं किं न करोति पापं'।

१६९. हूक—चमक जो किसी नस के हट बढ़ जाने से पैदा हो जाती है।

१७०. ज्वारी—जूआ खेलने वाला, कृष्ण जी ने शकुनी और कौरवादि जुआरियों से पांडवों की रक्षा की थी।

चोर—ब्रह्मा जी ने ग्वाल वालों और गायों का हरण किया था जिनसे श्रीकृष्ण ही ने उन्हें छुड़ाया था।

लवार—दुःशासन आदि कौरवों से द्रौपदी की रक्षा की थी।

१७२. आपु......नाहिं—अहमिति है तो ईश्वर नहीं है और ईश्वर है तो अहंता नहीं।

१७६. दमामो—(फ़ारसी दमामः) धौंसा, बड़ा नगाड़ा।

१८०. गथ—पूँजी, कोष ।

दशानन के रहते भी बंदरों ने लूट मचा दी थी ।

१८१. सरग पाताल—बड़े छोटे ।

१८२. रमसरा—ईख के खेत में ईख के समान ही जायता: होता है जिसकी पत्ती आँवले की पत्ती के ऐसी होती है पर उसमें रस नहीं होता ।

१८३. दाव—समान, इच्छानुकूल ।

कचपची—कृत्तिका नक्षत्र, छोटे छोटे तारों का समूह जो गुच्छे के समान दिखलाई पड़ता है ।

शेख़ सादी का एक शेर ठीक इसी भाव का है । शेर-अगर शह रोज़ रा गोयद शब अस्त ईं । बयायद गुफ़्त ईनक माहो परवीं ॥ अर्थ यह कि यदि बादशाह दिन को कहे कि यह रात है तो कहना चाहिए कि यह चंद्र और तारे हैं ।

१८६. मामिला—(अरबी मुआमिलः) मिलकर कोई काम करना, न्यायालय में कोई कार्य्य ।

१९०. पाँच रूप..........नलराज—इन लोगों पर बुरे दिन आ गए थे पर वह जूए का ही फल था ।

पांडवों की कथा प्रसिद्ध है कि वे जिस प्रकार जूए में कौरवों से हारकर बारह वर्ष वन में रहे और उसके अनंतर एक वर्ष तक अज्ञातवास किया था । इस समय प्रत्येक ने अलग अलग रूप धारण कर राजा विराट के यहां नौकरी कर ली थी ।

नल और दमयंती की कथा भी प्रचलित है । जूए में हारने पर जब नल देश-त्यागी हुए तब उनकी पतिव्रता स्त्री दमयन्ती ने भी उनका साथ दिया पर वह उसे जंगल में छोड़कर चले गए थे और राजा ऋतुपर्ण के यहाँ घुड़साल में नौकरी कर ली थी ।

१६४. गोय—छिपाकर।

१६६. संपुटी—शीशे के दो समान गोले जो एक में जुटे होते हैं और बीच में इतना बारीक छेद होता है कि एक में का जल दूसरे में घंटे भर में चला जाता है। प्राचीन समय में इसी प्रकार की जल या रेत की घड़ी प्रचलित थी।

घरिआर—घंटा, कांसपात्र जिस पर चोट देकर घंटा बजाते हैं।

१६७. शिवि—काशिराज शिवि जब बानवे यज्ञ कर चुके तब इंद्र विघ्न डालने की इच्छा से अग्नि को कबूतर बनाकर और स्वयं बाज़ का रूप धारण कर उसका पीछा करता हुआ यज्ञ में पहुँचा। कबूतर रक्षार्थ शिवि के गोद में गिर पड़ा तब उन्होंने अपने शरीर का मांस देकर उसकी रक्षा करनी चाही पर तौलते समय सारे शरीर का मांस भी कबूतर के तौल बराबर नहीं हुआ तब उन्होंने अपना सिर काटकर पलरे पर रखना चाहा कि भगवान ने स्वयं पहुँचकर उसे स्वलोक भेज दिया।

दधीचि—जब वृत्रासुर देवताओं के कुल शस्त्रों को निगल गया तब उन लोगों ने घबड़ाकर परमेश्वर की स्तुति की और उनके आज्ञानुसार दधीचि मुनि से जाकर उनकी हड्डी माँगी। उन्होंने परोपकारार्थ देह-त्याग कर दिया और विश्वकर्मा ने उनके हड्डी से वज्र नामक शस्त्र बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया।

१६८. पानी—जल, मान, प्रतिष्ठा, मोती की चमक।

२००. जरदी—(फ़ारसी ज़रदी) पीलापन।

२०३. अगम्य—जहाँ जा नहीं सकते, जिसे विचार नहीं सकते।

२०७. मझाव—जाना, चलना।

२१०. हलुकन—हल्के मनुष्य, छिछोरे, भूँसी।

गरूए—भारी आदमी, गंभीर मनुष्य, अन्न।

२११. घड़री—घड़ी।

२१४. तरैयन—तारे।

२१९. ढेकुली—गड़ारी जिस पर से रस्सी आती जाती है।

२२०. चोरी करि होरी रची—प्रह्लाद जी की बूआ अर्थात् हिरण्यकशिपु की बहिन धोखे से इन्हें गोद में लेकर अग्नि में बैठी पर स्वयं जल गई और वह बच गए।

२२१. बिपान—(संस्कृत विषाण) सींग।

२२५. बेसाहिओ—क्रय करना।

२३०. निरखत—देखता है, मनन करता है, निरीक्षण करता है।

२३१. थाके तारहिं—देखते देखते आँखें थक गईं।

२३२. मैन—मोम।

२३३. बनारसी—काशीवासी अर्थात् गंगा के इस पार रहने वाले।

मगहस्थान—मगध देश अर्थात् गंगा के उस पार जहाँ मृत्यु होने से मुक्ति नहीं होती।

२३८. मुकाम—(अरबी मुक़ाम) ठहरने का स्थान, ठहरना।

२३९. सलाम—(अरबी) आशीर्वाद, खुदा का नाम।

२४०. लसकरी—(फ़ारसी लश्करी) सैनिक।

जागीर—(फ़ारसी) भूमि जो राज्य की ओर से किसी को वेतन के रूप में मिलती है।

२४६. कूबर—रथ का वह भाग जिस पर जूआ बाँधा जाता है, हरसा, कुबड़ा।

२४७. तुरीय—[सं० तुरीय] चौथा, मोक्ष की अवस्था जब

भेद-ज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा ब्रह्म-चैतन्य हो जाती है।

परा—जो सब से परे हो, श्रेष्ठ।

२४९. बाट—बज़ार, रास्ता।

२५९. सीरे—ठंढा होने पर।

२६३. बिंदु—गोलाकार चिन्ह, यहाँ पृथ्वी से आशय लिया है।

बरवै नायका भेद

१. चनन—चंदन।

२. उपटेउ हेरि—उपटा हुआ देखकर।

४. जवकवा—(सं० यावक) अलता, महावर।

८. छीन मलिन बिखभैय्या—चंद्रमा घटता बढ़ता है, कलंकित है और समुद्र-मंथन के समय उसी में से निकला है जहाँ से विष भी निकला है इससे विष का सहोदर हुआ।

१६. घइलना—लोटा, जलपात्र।

१७. घरिअवा—घंटा घड़ी।

२१. कटील—जिसमें काँटे लगे हुए हैं।

२२. चोटार—धारदार, तेज़।

२४. हरवर—हड़बड़ाहट, घबड़ाहट।

उससवा—थकावट से जो साँस जल्दी जल्दी आती है।

प्रसेद—पसीना।

२८. छोहरिया—छोटी लड़की।

३२. रूख बेइलिया—बेल का वृक्ष।

३२. दवत—जल रही है।

दवरिया—दावानल, जंगल की आग।

३८. आसु—जल्दी ।
४५. छितिखनि—भूमि खोदती हुई ।
छिगुरिया—छोटी अँगुली ।
४६. वरोठवाँ—आँगन ।
५२. झुरते—साथ ही ।
५३. तेहि—इससे ।
५७. सहेटवा—संकेत स्थान, वह स्थान जहाँ मिलने का पहले से निश्चित हो चुका हो ।
५८. बिकरार—(फा० बेक़रार) घबड़ाती हुई ।
५९. भौ—बहकर ।
६२. जुगजाम—आधीरात ।
जमिनिया—(सं० यामिनी) रात्रि ।
७२. मुद अवरेख—प्रसन्न हो ।
८१. उच—उच्च, ऊँचा ।
८६. टोलवा—टोल, मंडली ।
८७. अलकिया—लंबे बाल, जुल्फ़ ।
९०. चितसरिया—चित्रशाला ।
९३. बिजन—हवा करना ।

शृंगार सोरठ

१. इस सोरठे को सम्मन नामक कवि की कृति भी कहते हैं ।
२. दुति—(सं० द्युति) लौ. उजेला ।
६. तुरुक गुरुक—असुरों के गुरु, शुक्र ।
सुरगुरु—जीव ।
चातक जातक—चातक से उत्पन्न, पी पी शब्द ।
बिन देह को—अनंग, कामदेव ।

मदनाष्टक

१. निशीथ—[सं०] अर्धरात्रि।

२. बा—[फा०] साथ, से।

चखन—[सं० चक्षु] आँख।

३. हस्त—[सं०] हाथ।

४. कारी—[फा०] काम करने वाली, असर करने वाली।

दिलदार—[फा०] मनहरण, प्यारी।

जुलफें—[फा०] बाल की लटें जो मुख के दोनों ओर लटकती हैं।

कुलफें—[अ०] दुख, कष्ट।

५. गुल चमन=[फा०] फूल बाग।

रेखता—[फा०] मिली जुली भाषा अर्थात् उर्दू, एक प्रकार का गाना जो ग़ज़ल के समान होता है।

६. तरल—चंचल।

तरनि—[सं० तरणि] नाव, स्थल कमलिनी।

७. कमनैत—धनुषधारी।

सार—स्थान, असर।

फुटकर पद

१. तुषार—[सं०] पाला।

छीरनिधि—क्षीरसमुद्र अर्थात् समुद्र।

कलानिधि—[सं०] चन्द्रमा।

२. गोहन [सं० गोधन=गायों का झुंड] संग, साथ, झुंड.

कमनीय—सुन्दर।

दमानक—तीरों की बौछार, तोपों की बाढ़।

३. दीन—देना।

अपनी अपना—आपस ही में।

५. खुरसाण—राजपूती भाषा में यह शब्द मुसलमानों के

लिए प्रयुक्त होता है। यह शब्द खुरासान से बना है।

महाराणा प्रताप सिंह के पुत्र अमरसिंह जहाँगीर से युद्ध करने और परास्त होने पर जंगलों में घूमते घबड़ा गए तब उन्होंने ख़ानख़ानाँ को निम्नलिखित दोहे लिखकर भेजे—

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करंत।
कहियो खानाखान ने, बनचर हुआ फिरंत॥
तुंवरासु दिल्ली गई, राठौड़ां कनवज्ज।
राण पयंपै खान ने, वह दिन दीसै अज्ज॥

इसीके उत्तर में ख़ानख़ानाँ ने यह दोहा लिख भेजा था। इसका अर्थ यह है कि 'धर्म रहेगा, पृथ्वी रहेगी (परन्तु) बादशाह का नाश होगा। हे राणा अमर! ईश्वर के ऊपर विश्वास रखो।' इस भविष्य वाणी पर उस समय शायद ही किसी ने विश्वास किया होगा।

६. गैन—दिन।

ऐसा कहा जाता है कि ख़ानख़ानाँ ने इसका पूर्वार्द्ध बनाया था पर दोहे की पूर्ति नहीं कर सके तब किसी स्त्री ने उत्तरार्द्ध बनाया था।

७. साल—[फा०शाल] दुशाला।

सधरनि—ऊपर के ओंठ।

पुरइन—कमल का पत्ता।

८. उनमानि—अनुमान।

कहा जाता है कि जब ख़ानख़ाना दर्शन के लिए आकर गोविंद कुंड की छत्री पर बैठे तब मुसलमान होने के कारण इनके लिए प्रसाद बाहर आया तब इन्होंने दोहा नं० ४५ कहा था। इसके अनंतर नाथ जी प्रसाद लेकर स्वयं बाहर आए तब न्होंने ये दोनों पद गाए।

साहित्य-सेवा-सदन, काशी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का सूचीपत्र

सदन-ग्रन्थ-रत्नमाला का प्रथम रत्न

बिहारी-सतसई सटीक

यह वही पुस्तक है कि जिसके कारण कविकुल-कुमुद-कलाधर बिहारीलाल की विमल ख्याति-राका साहित्य-संसार के कोने कोने में अजरामरवत् फैली हुई है और जिसकी कि केवल समालोचना ने ही विद्वन्मण्डली में हलचल मचा दिया है। सच पूछिये तो शृङ्गार रस में इसके जोड़ की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रंथ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज २५० वर्षों में ही इस ग्रन्थ की २५-२६ टीकायें बन चुकी हैं। इतनी टीकायें तो तैयार हुई हैं, किन्तु वे सभी प्राचीन ढंग की हैं। इसीलिये समझ में जरा कम आती हैं। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये साहित्य-संसार के सुपरिचित कविवर लाला भगवान-दीनजी ने अर्वाचीन ढंग की नवीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी इसका अनुमान पाठक टीकाकार के नाम से ही करलें। इसमें बिहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातोंका समावेश किया गया है। स्थान-स्थान पर कवि के चमत्कार का निदर्शन कराया गया है। जगह-जगह पर सूचनायें दी गई हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीका में आगई हैं। इतना सब होने पर भी इस पौने चार सौ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का मूल्य २।) मात्र है। सजिल्द २॥)।

देखिए, पुस्तक के विषय में 'सरस्वती' की क्या सम्मति है—
कोई टीका अब तक कालिज के छात्रों के लिए अर्वाचीन ढंग से नहीं मिलती। किन्तु, इस टीका में साधारण विद्यार्थियों के लिए लिखते हुए भी कवि के चमत्कार का स्थान-स्थान पर निदर्शन कराया गया है। महत्व के शब्दों के अर्थ दिये हैं। अलंकार बतलाये हैं। कहीं २ प्रीतम जी के उर्दू पद्यानुवाद के नमूने भी हैं।...भाषा स्पष्ट है। विद्यार्थियों की जितनी आवश्यकतायें हैं सभी पूरी की गयी हैं।

——:०:——

सदन-ग्रन्थरत्न-माला का द्वितीय रत्न

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देवीप्रसाद 'प्रीतम'। यह वही पुस्तक है जिसकी वाट हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जोह रहा था और जिसके शीघ्र-प्रकाशन के लिये तक़ाज़े पर तक़ाज़े आते रहे। पुस्तक की प्रशंसा का भार काव्य-मर्मज्ञों के ही न्याय और परख पर छोड़ कर इसके परिचय में हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है। घटना-क्रम, वर्णन-शैली तथा विषय-प्रतिपादन में लेखक ने कमाल किया है। तिस पर भी विशेषता यह है कि कविता की भाषा इतनी सरल है कि एकबार आद्योपान्त पढ़ने से सभी घटनायें हृदय-पटलपर अङ्कित हो जाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञों के लिए स्थान २ पर अलंकारों की छटा की भी कमी नहीं है। मुख पृष्ठ पर एक चित्र भी है। मूल्य केवल ।–)। एंटीक कागज़ के संस्करण का ।≤)।

सदन-ग्रन्थ-रत्नमाला का तृतीय रत्न

महाकवि आचार्य केशव-रचित

रामचन्द्रिका

हिन्दी-साहित्य-शिरोमणि रामचन्द्रिका का परिचय देना तो व्यर्थ ही है, क्योंकि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा ज्ञाता होगा जो इस ग्रन्थ के नाम से अपरिचित हो। हिन्दी-साहित्य में यह बेजोड़ ग्रन्थ है। एक अच्छे साहित्यज्ञ होने के लिये जितनी भी सामग्रियों की आवश्यकता है, वे सभी इसमें मौजूद हैं। अतः यदि आप हिन्दी की पूरी योग्यता प्राप्त करना चाहते हों और यदि काव्य-कला के उत्कृष्ट मर्मज्ञ होना चाहते हों, तो इस ग्रन्थ को अवश्य देखिये। याद रखिये, आचार्य केशव का नम्बर शेक्सपियर, कालिदासादि जैसे उद्भट कवियों से भी बढ़चढ़कर है। काव्य-प्रेमियों के साथ ही साथ भगवद्भक्तों को भी एकबार इस ग्रन्थ का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। और, हिन्दी-साहित्य में पूरा प्रवेश चाहने वालों के लिये तो इस पुस्तक का पढ़ना अनिवार्य ही है। यह ग्रन्थ बड़े २ विश्व-विद्यालयों-यूनिवर्सिटियों-साहित्य-सम्मेलनों आदि में पाठ्य पुस्तक भी नियत किया गया है। इसमें अर्थ-सरलता के लिए शब्द-कोष-युक्त टिप्पणी भी भरपूर दी गई है। हमारी रामचन्द्रिका का पाठ अन्य सभी संस्करणों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। (छप रही है)।

सदन-ग्रन्थ-रत्न-माला का चतुर्थ रत्न

केशव-कौमुदी

प्रथम भाग

(रामचन्द्रिका सटीक पूर्वार्ध)

हिन्दी के महाकवि आचार्य केशव की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक रामचन्द्रिका का परिचय तो आप उपर्युक्त तीसरी पुस्तक के विवरण के पढ़ने से ही पागये होंगे। केशव की रामचन्द्रिका जितनी ही उत्तम तथा उपयोगी पुस्तक है उतनी ही कठिन भी है। अर्थ-कठिनता में केशव की काव्य-प्रतिभा उसी प्रकार छिपी पड़ी हुई है जिस प्रकार रूई के ढेर में हीरे की कान्ति। केशव की इसी काव्य-प्रतिभा को प्रकाश में लाने के लिए यह सम्मेलनादि में पाठ्य-पुस्तक नियत की गई है। परीक्षार्थियों को इसका अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। पर, पुस्तक की कठिनता के आगे इनका कोई बस नहीं चलता। उन्हें लाचार होकर हिन्दी के धुरंधरों के पास दौड़ना पड़ता है। किन्तु वहाँ से भी "भाई हम इसका अर्थ बताने में असमर्थ हैं" का उत्तर पाकर बेरङ्ग लौटना पड़ता है। खासकर इसी कठिनाई को दूर करने तथा उनके अध्ययन-मार्ग को सुगमतर बनाने के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में रामचन्द्रिका के मूल छंदों के नीचे उनके शब्दार्थ भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलङ्कारादि दिये गये हैं। यथास्थान कवि के चमत्कार-निदर्शन के साथ ही साथ काव्य-गुण-दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना की गई है। छन्दों के नाम तथा अप्रचलित छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियों से मिलाकर संशोधित किया गया है। इन सब विशेषताओं से बढ़कर एक विशेषता यह है कि इसके टीकाकार हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा हिन्दू विश्व-विद्यालय के प्रोफ़ेसर लाला भगवान दीन जी हैं। अभी इस भाग में केवल रामचन्द्रिका के पूर्वार्ध (२० प्रकाश तक) की ही टीका की गई है। उत्तरार्ध की टीका भी तैयार हो रही है। पुस्तक परीक्षार्थीतर सज्जनों के भी देखने योग्य है। मूल्य साढ़े पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक का केवल २।), सजिल्द २॥), राजसंस्करण का मूल्य जिसमें रंग बिरंगे चित्र भी हैं ९॥।); सजिल्द ३) ।

सदन-ग्रन्थ-रत्नमाला का पाँचवाँ रत्न

रहिमन-विलास

यों तो रहीम की कविताओं का संग्रह कई स्थानों से प्रकाशित हो चुका है, किन्तु हमारे इस संग्रह में कई विशेषतायें हैं। इन विशेषताओं के कारण इस पुस्तक का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसका पाठ भी बड़े परिश्रम से संशोधित किया गया है। अभी तक ऐसा अच्छा और इतना बड़ा संग्रह कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। यह पुस्तक बड़ी ही उपादेय है। हमारा अनुरोध है कि एक बार इसे अवश्य देखिये।

ज़रा इस संस्करण की विशेषताओं पर तो ध्यान दीजिये।

(१) इसमें संग्रहीत दोहों की संख्या लगभग ३०० के है।

(२) मदनाष्टक भी, जो कि अन्य प्रतियों में नहीं मिलता, इसमें पूरा दिया गया है।

(३) शृङ्गार-सोरठ के भी सोरठे दिये गये हैं।

(४) रहीम-काव्य के श्लोक भी बड़ी कठिनता से खोजकर संग्रहीत किये गये हैं।

(६) रहीम का चित्र भी, जो कि मारवाड़-नरेश की चित्रशाला से प्राप्त हुआ है, दिया गया है।

(७) पाठान्तर भी दिये गये हैं।

(८) समान आशयवाले अन्य कवियों के दोहे पादटिप्पणी में दिये गये हैं।

(९) टीका-टिप्पणी भी भरपूर दी गई है, ताकि अर्थ समझने में कठिनता न पड़े।

(१०) इसके संकलन तथा सम्पादन-कर्ता काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के उपमंत्री बा० व्रजरत्नदास जी हैं। इतनी विशेषताओं के होते हुए भी इस पुस्तक का मूल्य ।=) आने हैं।

सदन ग्रन्थ-रत्नमाला छठवाँ रत्न

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका सटीक

(टीका० वियोगी हरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजी का नाम भला कौन नहीं जानता? बड़े से बड़े राजमहलों से लेकर छोटे से छोटे झोपड़े तक में गोस्वामी जी की विमल कीर्ति की चर्चा होती है। क्या राव क्या रंक, क्या बालक क्या वृद्ध, क्या मर्द क्या औरत सभी उनके रामायण का पाठ प्रतिदिन करते हैं। अङ्गरेजी-साहित्य में जो पद शेक्सपियर का है, संस्कृत-साहित्य में जो पद कालिदास का है वही पद हिन्दी-साहित्य में तुलसीदासजी को प्राप्त है। उपर्युक्त "विनय-पत्रिका" भी इन्हीं गोस्वामी तुलसीदासजी की कृति है। कहते हैं कि गोस्वामी जी की सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय-पत्रिका है। विनय-पत्रिका का सा भक्ति-ज्ञान का दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं। इसमें गोस्वामीजीने अपना सारा पाण्डित्य खर्च कर दिया है। इसकी रचना में उन्होंने अपनी लेखनी का अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। गणेश, शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीराम-चन्द्र की स्तुति के बहाने वेदान्त के गूढ़ तत्वों का समावेश कर दिया है। वेद, पुराण, उपनिषद, गीतादि में वर्णित ज्ञान की सभी बातें इसमें गागर में सागर की भाँति भर दी गई हैं। यह भक्ति-ज्ञान का अपूर्व ग्रन्थ है। साहित्य की दृष्टि से भी यह उच्चकोटि का ग्रन्थ है। इतना सब कुछ होने पर भी इसका प्रचार रामायण के सदृश न होने का एक यही

मुख्य कारण है कि यह पुस्तक भाषा में होने पर भी कठिन है। दूसरे वेदान्त के गूढ़ रहस्यों का समझलेना भी सब किसी का काम नहीं। तीसरे अभी तक कोई सरल, सुबोध्य तथा उत्तम टीका भी इस ग्रन्थ पर नहीं बनी। इन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के लिए सम्मेलन-पत्रिका के सम्पादक तथा साहित्य-विहार, ब्रजमाधुरी सार, संक्षिप्त सूरसागर आदि ग्रन्थों के लेखक तथा संकलनकर्त्ता लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगी हरिजी ने इस पुस्तक की विस्तृत तथा सरल टीका की है। वियोगीजी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित हैं, यह सभी जानते हैं। अतः उनका परिचय देनेकी आवश्यकता भी नहीं है। इस टीका में शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सबही कुछ दिये गए हैं। भावार्थ के नीचे टिप्पणी में अन्तर कथाएं, अलंकार, शंका-समाधान आदि के साथ ही साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियों के अवतरण भी दिये गए हैं। अर्थ तथा प्रसंग-पुष्टि के लिए गीता, बाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणों के श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। उपर्युक्त बातों के समावेश के कारण यह पुस्तक अपने ढंग की अद्वितीय हुई है। अब मूढ़ से मूढ़ जन भी भगवद्-ज्ञानामृत का पानकर मोक्ष के अधिकारी हो सकते हैं। हिन्दी-साहित्य में यह टीका कितने महत्व की हुई है यह उदारचेता, काव्य-कला-मर्मज्ञ एवं नीर-क्षीर-विवेकी साहित्यज्ञ ही बतला सकते हैं। तुलसी-काव्य सुधा-पिपासु सज्जनों से हमारा आग्रह है कि एक प्रति इसकी खरीदकर गुसाँईजी की रसमयी वाणी का वह आनन्द अवश्य लें जिससे अभीतक वे वंचित रहे हैं। छपाई-सफाई भी दर्शनीय है। मनो-मोहक जिल्द बँधी हुई लगभग ६५० साढ़े छः सौ पृष्ठ की पुस्तकका मूल्य २॥) ढाई रुपये के लगभग होगा। (छप रही है)।

सदन-ग्रन्थ-रत्नमाला का सातवाँ रत्न

गुलदस्तए बिहारी

(लेखक देवीप्रसाद 'प्रीतम')

बिहारी-सतसई के परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं, सभी साहित्य-प्रेमी उसके नाम से परिचित हैं। यह गुलदस्तए बिहारी उसी बिहारी-सतसई के दोहों पर रचे हुए उर्दू शेरों का संग्रह है, अथवा यों कहिये कि बिहारी-सतसई की उर्दू पद्यमय टीका है। ये शेर सुनने में जैसे मधुर और चित्ताकर्षक हैं वैसेही भाव-भङ्गी के ख्याल से भी अनुपम हैं। इनमें, दोहों के अनुवाद में, मूल के एक भी भाव छूटने नहीं पाये हैं, बल्कि कहीं कहीं उनसे भी अधिक भाव शेरों में आगये हैं। ये शेर इतने सरल हैं कि मामूली से मामूली हिन्दी जाननेवाला भी उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है। इन शेरों की पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्म्मा, मिश्र बन्धु, लाला भगवानदीन, वियोगी हरि आदि उद्भट् विद्वानोंने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। अतः विशेष कहना व्यर्थ है।

छपाई में क्रम यह रखा गया है कि ऊपर बिहारी का मूल दोहा देकर नीचे प्रीतम जी रचित उसी दोहे का शेर—हिन्दी तथा उर्दू दोनों ही लिपियों में—दिया गया है। ऐसा करने से हिन्दी अथवा उर्दू जाननेवाले दोनों ही सज्जनों के लिए यह सामान्य रूप से उपयोगी हुई है। पृष्ठ-संख्या लगभग २०० के होगी। मूल्य भी बारह आने के करीब होगा। (जन्माष्टमी तक प्रकाशित हो जायगी।

भारतेन्दु-स्मारक ग्रन्थ-मालिका संख्या १

कुसुम-संग्रह

सम्पादक-पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू-विश्व-विद्या-

मय तथा लेखिका हिन्दी-संसार की चिरपरिचित श्रीमती बंगमहिला। इस पुस्तक में बंगभाषा के रवीन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्र कुमार राय, रामानन्द चट्टोपाध्याय आदि धुरंधर विद्वानों के छोटे २ उपन्यासों तथा लेखों का अनुवाद है। कुछ लेख लेखिका के निजके हैं, जो कि समय समय पर सरस्वती में निकल चुके हैं और जनता द्वारा काफ़ी सम्मानित हो चुके हैं। पुस्तक बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है, खासकर भारतीय महिलाओंके लिए बड़े कामकी है। इसे संयुक्तप्रान्तकी गवर्नमेण्टने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize-books and Libraries) के लिये स्वीकृत किया है। कुछ स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक भी नियत की गई है। और कुछ नहीं, आप केवल निम्नलिखित सम्मतियों को ही देखिये।

पुस्तक की सुन्दरता में भी किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं की गयी है। विविध प्रकार के सात रंग-बिरंगे चित्रों से विभूषित, एंटीक पेपर पर छपी लगभग २२५ पृष्ठवाली इस पुस्तक का मूल्य सर्वसाधारण के हितार्थ केवल १।।) रखा गया है।

पुस्तक पर आई हुई कुछ सम्मतियाँ—

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने अपने उन्नीसवें वर्ष के कार्य्य-विवरण में "कुसुम-संग्रह" की गणना उत्तम पुस्तकों में करके इसका गौरव बढ़ाया है।

The book will form an admirable prize-book in girls' school......We repeat that the book will form a nice and useful present to females. It is no less interesting to the general reader.

The Modern Review.

The language of the book is excellent and

the subjects treated arealso very useful.—MAJOR B. D. Basu, I. M. S., (Retired) Editer, the Sacred Books of the Hindu-Series.

कहानियाँ और लेख मनोरंजक और उत्तम हैं।

—विहार-बन्धु।

निबन्ध सुपाठ्य और उपयोगी हैं। कागज और छपाई भी अच्छी है। —भारतमित्र।

कुसुम-संग्रह मुझे बहुत पसन्द है।

—सत्यदेव (परिव्राजक)।

पुस्तक बहुत पसन्द आई; यह उपयोगी पुस्तक हैं।

—मैथिली शरण गुप्त।

गल्प सब सुन्दर हैं। लेखन-शैली सरस और सरल है। पुस्तक सर्वथा सुदृश्य और उपयोगी है। स्त्रियों को उपहार में देने योग्य है। —इन्दु।

हिन्दी-साहित्य-भण्डार में अनोखी वस्तु हैं। लेख सबके पढ़ने योग्य, बहुत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी लेख तो बहुतही उत्तम हैं। —लक्ष्मी।

लेखन-शैली उत्तम हैं।...पात्रों के चरित्र-चित्र देख कर खुशी होती हैं। पुस्तक बड़ी उत्तमता से छापी गई है।

—जासूस।

कुसुम-संग्रह के कुसुम बहुत ही मुग्धकर हैं।...इन फूलों का आघ्राण हिन्दी के रसिक पाठकों को अवश्य लेना चाहिये।

—हिन्दी बङ्गवासी।

यह संग्रह यथार्थ में कुसुम-संग्रह है।...इस संग्रह को एक ही बार पढ़ लेने से कोई सन्तुष्ट हो जाय, यह कदापि सम्भव नहीं। एक बार समाप्त कर फिर पढ़ने की लालसा बनी रह जाती है।...प्रत्येक गृहस्थी में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। —भारतजीवन।

कुसुम-संग्रह का समालोचना-भार पाकर हम अपने को सचमुच बड़भागी समझते हैं। उनमें से बहुत सी तो मन लुभाने वाली आख्यायिकाएँ हैं, बहुतसी स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी उपदेश-मालाएँ हैं और बाकी सब विविध विषयों पर हैं।...और अधिक स्तुति हम आवश्यक नहीं समझते।...कुसुम-संग्रह में कविता नहीं......पर........प्रत्येक गद्य पृष्ठ से कविता का मधुर रस चूरहा है। —गृह-लक्ष्मी।

सच्चे सामाजिक उपन्यासों के भण्डार की पूर्ति ऐसी ही पुस्तकों से हो सकती है।...इसमें ऐसी शिक्षाप्रद आख्यायिकाओं का समावेश है जिनको पढ़कर साधारण तथा सभी स्त्रियों के आदर्श उच्च हो सकते हैं और सामाजिक जीवन प्रशस्त-जीवन बन सकता है।...स्त्रियों को चाहिये कि ऐसी पुस्तकों का अध्ययन किया करें। भाषा बहुत सरल है, जिससे लेखिका का उद्योग भली भांति पूर्ण हो गया है। छपाई बहुतही अच्छी है। —नवजीवन।

भारतेन्दु-स्मारक ग्रन्थ-मालिका संख्या २

मानकुमारी

बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक चण्डीचरण सेन के "रामेर कि एई अयोध्या ?," नामक ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद। अनुवादक हैं भारतेन्दु-भ्रातृज स्वर्गीय बाबू ब्रजचन्द्रजी। अयोध्या के नव्वाबी शासन के समय की एक बड़ी ही लोमहर्षणकारी घटना का जीता जागता चित्र है। किस तरह पर अवध अंग्रेजों के हाथ में आया और किस तरह से वहां के नवाब तख्त से उतारे गये इसका पूरा पूरा हाल इसमें लिखा गया है। जगह जगह पर ऐतिहासिक पात्रों के असली चित्र भी, जोकि बड़े परिश्रम से मिले हैं, दिये गये हैं। इतिहास-प्रेमी सज्जनों को यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिये। इस पुस्तकको जनता

ने इतना अधिक पसन्द किया कि थोड़े ही दिनों में इसका प्रथम संस्करण हाथो हाथ बिक गया और समाचार-पत्र-पत्रिकाओं तथा विद्वानों की सैकड़ों अच्छी से अच्छी सम्मतियाँ आईं। अबकी बार इसका दूसरा संस्करण बड़े सजधज से निकल रहा है। बहुतसा परिवर्द्धन भी किया गया है। चित्र-संख्या भी बढ़ाकर ३२ कर दी गई। रंगीन चित्र भी नये दिये गये हैं। पृष्ठ संख्या लगभग ५०० के हैं। मूल्य ३) तीन रुपये के लगभग होगा। (दीपावली १९८० वि० तक प्रकाशित हो जायगी)।

भारतेन्दु-स्मारकग्रन्थ-मालिका संख्या ३

मुद्राराक्षस

भारत-भूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के मुद्राराक्षस का अभीतक कोई शुद्ध तथा विद्यार्थियोपयोगी संस्करण नहीं निकला था। जो संस्करण आजकल बाजार में बिक रहा है वह अत्यन्त अशुद्ध है। इसीलिए नागरी प्रचारिणी-सभा के उपमंत्री जीने बड़े परिश्रम से इसका पाठ शुद्धकर तथा विद्यार्थियों के उपकारार्थ भरपूर टिप्पणी देकर यह संस्करण निकाला है। (अक्टूबर १९२३ तक छप जायगी)।

बाहरी पुस्तकें

ध्यान रखिये-इस सूची में उन्हीं पुस्तकों के नाम दिये गए हैं जिनपर कि हिन्दी के धुरंधर विद्वानों ने तथा उच्चकोटि की पत्रिकाओं ने अपनी अच्छी से अच्छी सम्मतियाँ दी हैं और जिन्हें प्रथम श्रेणी की पुस्तकों में स्थान मिला है। अतः इन पुस्तकों की कमसे कम एक प्रति प्रत्येक पुस्तकालय तथा स्कूल में अवश्य रहनी चाहिए और प्रत्येक पुस्तक-प्रेमीको इनका पाठ अवश्य करना चाहिये। इस सूची में साधारणश्रेणी की पुस्तकों को स्थान नहीं दिया गया है।

साहित्यालोचन-लेखक पष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मे-

लन के सभापति बा० श्यामसुन्दरदास, बी. ए.। इसमें यह दिखाया गया है कि कला, काव्य, नाटक, उपन्यास आदि का स्वरूप कैसा होना चाहिये। इसमें लेखकों कवियों, नाटककारों समालोचकों आदि साहित्य-प्रेमियों के जानने योग्य इतनी अधिक बातें आगयी हैं कि किसी भी साहित्य सेवी को इसके अध्ययन से वंचित न रहना चाहिए। बड़े २ विद्वानों ने मुक्त-कंठ से इस पुस्तक की प्रशंसा की है। पुस्तक उपादेय है। मूल्य राजसंस्क०३)। साधारण २)।

आलमकेलि—काव्य-रसिकों! लीजिये, अब आपको आलम और शेख के कवितामृत-पान केलिए तरसना न पड़ेगा। आलम की अप्राप्य कविता भी साहित्यान्वेषकोंने बड़े परिश्रमसे ढूँढ़ निकाला। यह ग्रन्थ अभी हालही में प्रकाशित हुआ है। मूल्य १)

कविता-कौमुदी—यदि थोड़ेही व्यय में आप हिन्दीके समस्त प्राचीन तथा अर्वाचीन उद्भट कवियों के काव्यसुधा-रस का पान करना चाहते हों तो इसे अवश्य मँगाइये। इस पुस्तक में साहित्य संसार के सभी कवियोंकी जीवनियाँ तथा उनकी उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह किया गया है। आप सूर, तुलसी, कबीर, केशव, देव, बिहारी, पद्माकर, भूषण, गंग, घाघ आदि ६२ कवियों की कविताएँ प्रथम भागमें और हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन आदि ४० अर्वाचीन कवियोंकी कविताएँ द्वितीय भाग में पावेंगे। पुस्तक साहित्य-सेवियों के बड़े काम की है। मूल्य प्रथमभाग का २॥) और दूसरे भाग का ३) है।

प्रेमसागर—प्रेमसागर प्रसिद्ध ग्रन्थ है और इसके अनेक संस्करण बाज़ार में मिलते हैं। परन्तु उनमें संशोधित और संस्कृत शब्दों की भरमार है। यह संस्करण सं० १८१०

ई० की प्रति के आधार पर तैयार किया गया है। जिसे ग्रन्थ-कर्त्ता ने स्वयं अपने संस्कृत प्रेस, कलकत्ते, में छपाया था। इसकी भूमिका में लल्लूलालजी का जीवन चरित्र और हिन्दी गद्यसाहित्य का इतिहास भी दिया गया है। कृष्ण-कथा होने के कारण हिन्दी के प्रत्येक प्रेमी और भगवद्भक्त को यह ग्रन्थ अपने घर में रखना चाहिये। पृष्ठ-संख्या साढ़े चार सौ के लगभग। मूल्य २) रु०।

संक्षिप्त सूरसागर–इसका सम्पादन प्रयाग-विश्वविद्यालय के इतिहासाचार्य बाबू बेणीप्रसाद, एम० ए०, ने किया है जो लोग सूरसागर की बड़ी मोटी सी जिल्द खरीद नहीं सकते और जिनको समग्र सूरसागर की सैर करने को समय नहीं है उन्हें इस संग्रह-ग्रन्थ से बड़ा लाभ होगा। भक्तप्रवर सूरदास के छँटे हुए बढ़िया बढ़िया पदों का इसमें समावेश हो गया है। पाठ भी शुद्ध है। फिर एक और खूबी यह है कि कथा का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। स्थान स्थान पर तुलसीदास, कबीर, दादू, हरिश्चन्द्र और रसखान प्रभृति प्रसिद्ध हिन्दी-कवियों की उक्तियाँ, सूरदास की कृति से तुलना करने के लिये, उद्धृत कर दी गई हैं। आरम्भ में सूरदासजी का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। इस पुस्तक की सभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या पौने पाँच सौ से ऊपर। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥) दो रुपये आठ आने।

महाभारत-मीमांसा–इसके लेखक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य हैं। इसमें महाभारत का युद्ध कब हुआ, महाभारत की रचना कब और कैसे हुई, किन किन लेखकों ने की, जुदा जुदा प्रतियों में उसमें कितना अन्तर है, उसकी रचना के समय सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक

अवस्था कैसी थी, लोग कैसी पोशाक पहनते थे, क्या खाते पीते थे, कैसे युद्ध करते थे, वर्णाश्रम-व्यवस्था कैसी थी, अन्य कौन कौन धर्म थे, उनकी क्या दशा थी, हिन्दू-धर्म या वैदिक धर्म का क्या स्वरूप था, ज्योतिष, वैद्यक, गणित कलाकौशल, स्थापत्य आदि विद्याओं की कितनी उन्नति हुई थी, विवाह कितने प्रकार के होते थे, एक स्त्री के अनेक पति और एक पति की अनेक स्त्रियां, अनुलोम विवाह, प्रतिलोम विवाह आदि कैसे होते थे, विदेशों से हमारा कैसा सम्बन्ध था, कौन कौन विदेशी जातियाँ यहाँ बस गई थीं, उस समय भारत का नकशा कैसा था, उस समय के प्राचीन देश, नगर, नदी, पर्वत आदि अब किन नामों से प्रसिद्ध हैं, असुर, गन्धर्व, राक्षस, नाग आदि कौन थे और कहाँ के रहनेवाले थे, आदि अगणित बातों पर इसमें प्रकाश डाला गया है। विद्वानों और इतिहासज्ञों के लिये बड़े ही महत्व का ग्रन्थ है। मूल्य चार रुपया, राज-संस्करण का छः रुपया।

हिन्दी शब्दसागर—इस प्रकार सर्वाङ्ग-पूर्ण कोश अभी तक किसी देशी भाषा का नहीं निकला है। इसमें सब प्रकार के शब्दों का संग्रह है। दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, कलाकौशल, इत्यादि के पारिभाषिक शब्द पूर्ण और स्पष्ट व्याख्या के सहित मिलेंगे। और और कोशों के समान इसमें अर्थ के स्थान पर पर्य्यायमाला नहीं दी गई है। प्रत्येक शब्द का क्या भाव है यह अच्छी तरह समझाकर तब पर्य्याय रक्खे गये हैं। जिन प्राचीन शब्दों के कारण पुराने कवियों के ग्रन्थरत्न समझ में नहीं आते थे उनके अर्थ इसमें मिलेंगे। अब तक इसके २६ भाग छप चुके हैं। मूल्य २६)।

तुलसी-ग्रंथावली—गो० तुलसीदासजी की त्रिशत-

वार्षिक स्वर्गारोहन-तिथि के उपलक्ष में काशी-नागरी-प्रचारणी सभाने उनके समस्त ग्रंथों का संग्रह छापकर प्रकाशित किया है। इस ग्रंथावली के पहले खंड में रामचरित-मानस, दूसरे खंड में शेष ११ ग्रंथ अर्थात् दोहावली, गीतावली, विनयपत्रिका, कवित्त रामायण, रामाज्ञा, रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमंगल, वैराग्यसंदीपनो, पार्वतीमंगल और कृष्णावली, और तीसरे खंड में गो॰ तुलसीदास के संबंध के लेख तथा उनका चित्र दिया गया है। अलग-अलग खंडों का मूल्य प्रति खंड २॥) रु॰ है। तीनों खंड एकसाथ लेनेसे ६) रु॰ लिया जायगा।

शशांक—यह श्री राखालदास बंद्योपाध्याय का लिखा हुआ और करुणाकी तरह परम मनोहर ऐतिहासिक उपन्यास है। यह गुप्त साम्राज्य के ह्रासकाल से सम्बन्ध रखता है और इसमें सातवीं शताब्दी के आरम्भ के भारत का जीता-जागता सामाजिक और ऐतिहासिक चित्र दिया गया है। मूल्य ३)।

गौरमोहन—डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "गोरा" नामक उपन्यास का बङ्गभाषा-भाषी समाज में बड़ा आदर है। गौरमोहन उसी प्रसिद्ध उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। इसका विषय सामाजिक है। इसको पढ़ते जाइए और हिन्दू-समाज की गुत्थियों को देखिए कि कैसी उलझी हुई हैं। शिक्षिता लड़कियों के उन्नत विचार, चरितनायक की दृढ़ता, धर्मप्राणता, स्वदेश-वत्सलता और अन्त में उन्नत पथ पर जा पहुँचना सचमुच प्रशंसनीय हैं। परेश बाबू का गाम्भीर्य देखते ही बनता है। कथा-भाग का प्रत्येक पात्र अपनी विशेषता रखता है। पुस्तक पढ़ने लायक है। पुस्तक दो भागों में सजिल्द है। ८०० से ऊपर पृष्ठ हैं। मूल्य ४) चार रुपये।

—०—

बी. एल्. पावगी द्वारा हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित १९१९ ०